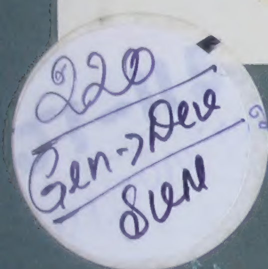


चिन्तन-अनुचिन्तन

डॉ. एल. सुनीताबाई

चिन्तन-अनुचिन्तन ऐसे निबन्धों का संकलन है जिनमें हिन्दी और कोंकणी की मूलभूत एकता की पहचान का प्रयत्न किया गया है। लेखिका ने हिन्दी एवं कोंकणी भाषा में पाई जानेवाली समानताओं को इन निबन्धों में सोदाहरण अंकित किया है। दोनों भाषाओं के साहित्यों में मिलने वाले समान भावों, विचारों और शैलियों का अंकन भी इसमें हुआ है। इस बात में कोई शंका नहीं है कि यह पुस्तक भारतीय भाषाओं के विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी।


KONKANI BHAS ANI SAN[illegible] PRATHISTAN (R)
Navarathna
Palace
K.S. Rao Road
Mangalore-1

चिन्तन-अनुचिन्तन

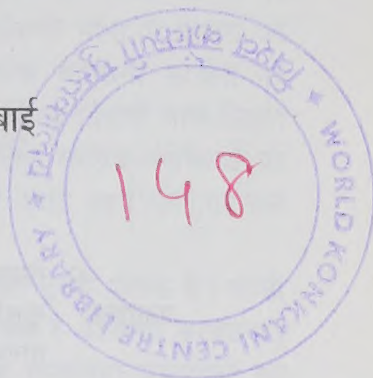
(हिन्दी तथा कोंकणी भाषा एवं साहित्य की मूलभूत एकता की पहचान)

चिन्तन-अनुचिन्तन

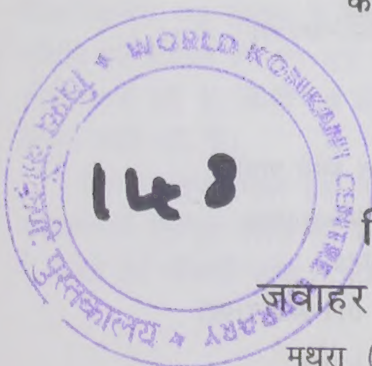
(हिन्दी तथा कोंकणी भाषा एवं साहित्य की मूलभूत एकता की पहचान)



डॉ. एल. सुनीताबाई



प्रकाशक
सुकृतीन्द्र प्राच्य-विद्या शोध संस्थान
कोचिन-32



वितरक
जवाहर पुस्तकालय
मथुरा (उ.प्र.)-281001

प्रकाशकः सुकृतीन्द्र प्राच्य-विद्या शोध संस्थान कूत्ताघाडी; तम्मनम कोचिन-682032

वितरक : कुंजबिहारी पचौरी
जवाहर पुस्तकालय
सदर बाजार, मथुरा (उ.प्र.)-281001

दूरभाष : 0565-405110

संस्करण : 2002

मूल्य : 125/- (एक सौ पच्चीस रुपये मात्र)

शब्दांकन : उमेश लेज़र प्रिंट्स, दिल्ली-110032
दूरभाष : 011-282 1174

आवरण : उमेश शर्मा (**दूरभाष** : 011-282 7190)

मुद्रक : रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

प्रकाशकीय

सुकृतीन्द्र प्राच्यविद्या-शोध संस्थान का मूल उद्देश्य प्राच्यविद्या शिक्षण एवं अनुसंधान रहा है। इस संस्थान के अन्तर्गत कोंकणी भाषा के शिक्षण एवं अनुसंधान के लिए सन् 1998 में **स्कूल ऑफ कोंकणी स्टडीस** की स्थापना हुई। संस्थान के इस विभाग का प्रमुख उद्देश्य कोंकणी भाषा-शिक्षण के साथ-साथ अनुसंधान भी रहा है। इसके लिए साहित्य-संगोष्ठियों का आयोजन शोध-पत्रों एवं पुस्तकों का प्रकाशन आदि कार्य यहाँ पर चल रहा है।

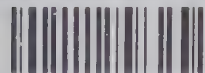
चिन्तन-अनुचिन्तन इस दिशा में प्रकाशित दूसरी पुस्तक है। पहली पुस्तक सन् 2001 में प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक है **कोंकणी बरयतना।** इस पुस्तक के अन्तर्गत शुद्ध कोंकणी-लेखन से सम्बन्धित समस्याओं का सोदाहरण विश्लेषण हुआ है। चिन्तन-अनुचिन्तन की लेखिका डॉ. एल. सुनीता बाई, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, इस संस्थान के स्कूल ऑफ कोंकणी स्टडीस की सलाहकार समिति की सदस्या हैं। गत कई सालों से कोंकणी भाषा एवं साहित्य में शोध करती रही हैं। हिन्दी एवं कोंकणी के तुलनात्मक अध्ययन में इनकी विशेष रुचि रही है।

चिन्तन-अनुचिन्तन ऐसे निबन्धों का संकलन है जिनमें हिन्दी और कोंकणी की मूलभूत एकता की पहचान का प्रयत्न किया गया है। लेखिका ने हिन्दी एवं कोंकणी भाषा में पाई जानेवाली समानताओं को इन निबन्धों

में सोदाहरण अंकित किया है। दोनों भाषाओं के साहित्यों में मिलने वाले समान भावों, विचारों और शैलियों का अंकन भी इसमें हुआ है। इस बात में कोई शंका नहीं है कि यह पुस्तक भारतीय भाषाओं के विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी।

कोचिन-32
30-1-2002

डॉ. वी. नित्यानन्द भट्ट
निदेशक
सुकृतीन्द्रप्राच्य-विद्या शोध-संस्थान
कोचिन-32



दो शब्द

भारत अनेक भाषाओं का विशाल देश है और गुण एवं परिमाण में सभी भाषाओं का समृद्ध साहित्य है। अनेकता में एकता भारत की विशेषता है। ''अविभक्त विभक्तमिव स्थिरम्'' वाली उक्ति यहाँ सार्थक होती है। बाहरी तौर पर विभिन्नताओं के होते हुए भी इनका रिक्थ समान है। इनका पार्थक्य आत्मा का नहीं बल्कि शरीर का है। तुलनात्मक अध्ययन के जरिए इन भाषाओं की लुप्त कड़ियों को अवश्य ही जोड़ा जा सकता है। मूलभूत क्षेत्रों की समानता मूलतः मानवीय प्रकृति एवं एकता तथा एक ही सांस्कृतिक परम्परा के अस्तिव के कारण हो सकती है। इनका गहरा अध्ययन भारतीय चिन्तन धारा की अखण्ड एकता का परिचायक बन सकता है। भारतीय भाषाओं में दिखाई पड़नेवाले सांस्कृतिक साम्य का मूल कारण संस्कृत रही है जो किसी समय भारत की राष्ट्रभाषा थी और आधुनिक भारतीय भाषाओं को बहुत तरह से प्रभावित कर चुकी है। हर भाषा के मूल में संस्कृत भाषा की यह चेतना इनकी मूलभूत समानता को समझने में सहायक बन सकती है। भारतीय साहित्य की इस अवधारणा को तुलनात्मक अध्ययन के रूप में प्रस्तुत करने से एक श्रेष्ठतर अभिधान को ही प्रस्तुत किया जाता है। भारतीय साहित्य भिन्न-भिन्न भाषाओं का होते हुए भी एक विचारवाला है। यह बात भारतीय साहित्य की पहचान में अधिक सहायक बन सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन यह दिखाने में सहायक हो सकता है कि भारतीय

सन्दर्भ में हिन्दी और कोंकणी की क्या हस्ती है? वे दोनों कहाँ खड़ी हैं? उनका आपसी सम्बन्ध क्या है? इसका उत्तर दोनों भाषाओं से जुड़े हुए सांस्कृतिक सन्दर्भों के अंकन एवं विश्लेषण में हो सकता है। चूंकि कोंकणी नई विकसित बलिक लम्बी ऐतिहासिक परम्परावाली भाषा है इसलिए इसका हिन्दी एवं अन्य भाषाओं से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए भारतीय भाषाई इतिहास में उचित स्थानांकन भी हो सकता है।

आज जब भारतीय स्तर पर एक व्यापक मंच की सर्वाधिक आवश्यकता महसूस हो रही है, ऐसी हालत में मेरा विचार है कि यह छोटा-सा प्रयत्न व्यर्थ नहीं जा सकता। आशा है सहृदय पाठक इसे सहर्ष स्वीकार करेंगे।

कोचिन-30

30 जनवरी, 2002

सुनीता

विषय सूची

हिन्दी तथा कोंकणी का उद्भव और विकास

हिन्दी और कोंकणी भारतीय आर्य परिवार की भाषाएँ हैं। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है और कोंकणी गोवा की राजभाषा है। दोनों भाषाओं का मूल उत्तर भारत ही रहा है। आज भी हिन्दी का मुख्य क्षेत्र उत्तर भारत ही है। जब कि कोंकणी सुदूर दक्षिण में गोवा के अतिरिक्त महाराष्ट्र, कर्नाटक और केरल तक फैल गई है। दोनों भाषाएँ एक ही मूल से उत्पन्न होकर विकसित हुई हैं। इसीलिए ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो दोनों भाषाओं के विकास के विभिन्न स्तरों पर कई समानताएँ देखी जा सकती हैं।

आर्य परिवार की भाषाओं का उद्भव और विकास प्राचीन भारतीय आर्यभाषा याने संस्कृत से माना जाता है। डॉ. सुनीतिकुमार चटुर्ज्या के मतानुसार भारत में आर्य लोग सर्वप्रथम पश्चिमोत्तर प्रदेश में बसे और वहाँ से पूर्व की ओर फैल गए। आर्यों का यह मूल वासस्थान सरस्वती नदी के तीर पर था जो सरस्वती प्रदेश नाम से जाना जाता था। कोई भी भाषा परम्परा से अर्जित साधनों को अपने में समेट कर निरन्तर बहती रहती है। हिन्दी और कोंकणी भी इसका अपवाद नहीं है। दोनों का मूल उत्स अत्यधिक प्राचीन रहा है और विकास की अवस्थाएँ भी सामान्य रूप से समानता दिखाती हैं।

हिन्दी और कोंकणी की प्राचीन विरासत गण-समाजों से जनपदों और उसके बाद विशिष्ट भाषागुटों में विकसित होती रही है। भरत, कोसल एवं

मगध, पश्चिम में कुरुक्षेत्र से लेकर पूर्व में मगध तक ये भाषिक गुट फैले थे। इनमें भरतगण वैदिक भाषा-संस्कृति और यज्ञप्रधान जीवन शैली का गुट था। कोसल मुख्यतः मध्यदेश याने गंगा सरयू और यमुना के आसपास का इलाका विरोधी जीवन शैलियों का विलक्षण समन्वय लेकर आया था। इसका प्रभाव भाषा पर भी देखा गया। रामायण, महाभारत और भगवद्गीता इन्हीं की सर्जनाएँ थीं। जब गणसमाज टूट गए तो इसके बदले वर्ग और समाज सामने आए। संस्कृत, प्राकृत एवं आगे हिन्दी की प्रकृतोद्भूत बोलियाँ तथा कोंकणी इस विकास की गवाह हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने भी इन गण समाजों एवं भाषिक गुटों का जिक्र किया है और कहा है कि वैदिक भाषा भी इन्हीं गण-भाषाओं से रूपायित हुई थी। यही प्रक्रिया प्राकृत एवं अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में भी पायी जाती है। हिन्दी और कोंकणी में ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं जो इन देशी भाषाओं में पाये जाते हैं। ये शब्द प्राचीन मध्यदेश में प्रचलित थे। ग्यारहवीं शताब्दी में दक्षिण कोसली रचनाकार रोड कवि द्वारा रचे गए प्रेमकाव्य में प्रयुक्त शब्दावली का हिन्दी और कोंकणी शब्दावली से बहुत अधिक साम्य देखा जा सकता है। ध्वनि एवं अर्थ की दृष्टि से कहीं-कहीं छोटे-मोटे परिवर्तन अवश्य परिलक्षित होते हैं फिर भी शब्दावली का रूप ज्यादातर प्राचीन रूप से मेल खाता है। उदाहरण के लिए—

कोसली	**कोंकणी**	**हिन्दी**
पाँव	पावँ	पाना
पाआ	पाय	पाँव
पातल्	पत्तळ	पतला
पुनिव	पुन्नव	पूनम
भिज्ज	भिज्ज	भीजना

आधुनिक आर्यभाषाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा है। फिर भी यह मन विश्वास के साथ ग्रहण किया जा सकता है कि संस्कृत ही कालांतर में अपभ्रष्ट होकर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश नामों से अभिहित हुई थी। अपभ्रंश ने हिन्दी तथा अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं की आधार भूमि तैयार कर दी। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में दिखाई पड़नेवाली कई प्रवृत्तियाँ अपभ्रंश की ही मानी जाती हैं। विद्वानों

ने अपभ्रंश को उकारबहुला भाषा कहा है। हिन्दी की कई बोलियों और कोंकणी में भी अनेक उकारांत शब्द मिलते हैं जैसे–

हिन्दी–अगु, एक्कु, कारणु, जगु, प्यासु आदि

कोंकणी–रायु, प्राणु, देवु, गांवु, पूतु आदि

हिन्दी और कोंकणी में पायी जाने वाली दो वचनों की व्यवस्था भी अपभ्रंश से मेल खाती है। लेकिन यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि कोंकणी में प्राकृत और संस्कृत के समान तीन लिंगों की व्यवस्था है जबकि हिन्दी और कई अन्य भारतीय भाषाओं में नपुंसकलिंग लुप्त हो गया है। यह ऐसी बात का सूचक है कि कोंकणी आज भी विकास की उस प्राचीन दशा को दिखाती है जबकि हिन्दी विकसित होकर आगे बढ़ गई है। रूपों के सरलीकरण की प्रक्रिया में नपुंसकलिंग हिन्दी में लुप्त हो गया है। संस्कृत के कई शब्द प्राकृत और अपभ्रंश से होकर हिन्दी एवं कोंकणी में आ गए हैं। नीचे दी गई तालिका इसका प्रमाण प्रस्तुत करती है–

संस्कृत	**प्राकृत**	**कोंकणी**	**हिन्दी**
अङ्गारकः	इंगालो	इंगाळो	अंगारा
आम्रः	अम्ब	अम्बो	आम
कर्पट	कप्पडो	कप्पड	कपड़ा
स्तंभः	खंभओ	खंभो	खंभा
सुवर्णकारः	सुण्णार	सोन्नारु	सोनार
रटनम्	रअणं	रण्णे	रोना
दृष्टि	दिट्ठि	दिष्टि	दीठ
पृष्ठ	पट्ठी	फाटि	पीठ
वाह्यः	वोज्झ	वोज्जें	बोझ

इन उदाहरणों से स्पष्ट होगा कि विकास की दशा में हिन्दी तथा कोंकणी एक दूसरे के बहुत निकट रही है। दोनों में प्राप्त शब्दों की ध्वनियों में कहीं-कहीं थोड़ी बहुत भिन्नताएँ मिलती हैं। इसको छोड़कर दोनों भाषाओं के विकास का एक ही रूप रहा है।

प्राचीनकाल से ही हिन्दी का क्षेत्र मध्यदेश रहा है और भारत के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास में इसका विशेष महत्त्व भी है। हिन्दी का

प्रचार प्रसार इसी मध्यदेश में हुआ था। इस प्रदेश में अनेक जनपदीय बोलियाँ प्रचलित थीं। पश्चिमी प्रदेश की बोलियों का प्रधान रूप शौरसेनी अपभ्रंश था जिससे पश्चिमी हिन्दी विकसित हुई। पूर्वी हिन्दी का विकास मागधी और अर्धमागधी अपभ्रंश से माना जाता है। कोंकणी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक सर्वमान्य निष्कर्ष निकालना यद्यपि कठिन है फिर भी डॉ. दल्गाद के अनुसार इसका विकास सरस्वती बालभाषा नामक एक प्राचीन बोली से हुआ है जो मूलतः तिरहुत में बोली जाती थी। उन्होंने कहा है कि संस्कृत की पुत्री बालभाषा रही है और उसकी पुत्री कोंकणी है। तिरहुत भी ऊपर कहे गये प्राचीन मध्यदेश के निकट ही रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि सरस्वती प्रदेश से निकले हुए आर्यों की एक टोली पश्चिमी तट से होकर गोवा में आई थी। इस प्रवास के समय पश्चिमी प्रदेशों की बोलियों से इन लोगों का विशेष सम्बन्ध रहा। हेमचन्द्र की देशीनाममाला और हिन्दी तथा कोंकणी में मिलनेवाले समान शब्द इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं कि हिन्दी और कोंकणी अपने प्राचीन रूप में बहुत ही निकट की भाषाएँ रही थीं। राजशेखर की 'पश्चिमेन अपभ्रंशिनः कवयः'' वाली उक्ति इस बात का समर्थन करती है कि इन पश्चिमी प्रदेशों की बोलियों से अपभ्रंश की भी कुछ लेन देन रही थी। नीचे दी जाने वाली देशी नाममाला कोंकणी और हिन्दी की शब्दावली इस बात की पुष्टि करती है कि हिन्दी और कोंकणी का प्राचीन रूप आपसी सम्बन्ध लिए हुए था।

देशी नाममाला	**कोंकणी**	**हिन्दी**
अक्का	अक्का	अक्का
अज्जो	अज्जो	आजा
अप्पा	अप्पा	अब्बा
उडिदो	उडीदु	उडद
ओप्प	ओप	ओप
चंगं	चाँग	चंगा
दोरो	दोरु	डोरी
पोट्टं	पोट	पेट

देशीनाममाला में प्राप्त इन शब्दों से कोंकणी तथा हिन्दी शब्दों का

सम्बन्ध इस बात को व्यक्त करता है कि प्राचीन हिन्दी तथा कोंकणी का उस समय की देशी भाषाओं से समान सम्बन्ध रहा है। पश्चिमी तट से होकर प्राचीन भाषा बोलनेवाले ये लोग दक्षिण की ओर बढ़े जहां कोंकण में आकर इस प्राचीन भाषा ने अपना नाम 'कोंकणी' स्वीकार किया। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हिन्दी और कोंकणी का मूल अपने में कई समानताओं को लिए हुए है। इसी के आधार पर आगे हम कोंकणी और हिन्दी ध्वनियों का प्राचीन संस्कृत ध्वनियों के आधार पर विकास निर्धारित करेंगे।

हिन्दी और कोंकणी ध्वनियों का विकास

हिन्दी और कोंकणी ध्वनियाँ मूलतः संस्कृत से विकसित हैं। इन्हें दो वर्गों में बांटा जा सकता है।

(1) संस्कृत से ज्यों की त्यों विकसित और

(2) कुछ नियमित परिवर्ततनों के आधार पर विकसित पहले वर्ग के अन्तर्गत वे ध्वनायाँ आती हैं जो प्रायः तत्सम शब्दों में पायी जाती हैं। जैसे–

संस्कृत	हिन्दी	कोंकणी
इच्छा	इच्छा	इच्छा
उत्साह	उत्साह	उत्साह
चतुर्थी	चतुर्थी	चतुर्थी
कर्तव्य	कर्तव्य	कर्तव्य

दूसरे वर्ग के अन्तर्गत तद्भव शब्दों में मिलनेवाली ध्वनायाँ आती हैं। इन्हें विकास की दशा में आए हुए ध्वनि परिवर्तन को आधार बनाकर निम्नलिखित दिशाओं में चित्रित किया जा सकता है।

	संस्कृत	प्राकृत	कोंकणी	हिन्दी
1. ऋकार का लोप	गृहम्	घर	घर	घर
	पृष्ठम्	पट्ठी	पीठ	फाटि
2. क्षतिपूरक दीर्घीकरण	कर्म	कम्म	काम	काम
	निद्रा,	निद्दा	नीद	नींद
3. अक > अ, ओ–	मञ्चक	मञ्चओ	मंच	मचो
	कण्टक	कण्टओ	काँटा	कांटो

4. इका > इ ई–	वर्तिका	वत्तिआ	बाती	वाति
	झाटिका	साडिआ	साडी	साडि
5. घोषीकरण–	घोटक	घोडओ	घोडा	घोड़ो
	कीटक	कीडओ	कीडा	कीडो
6. लोप–	हरिद्रा	हलिद्दा	हल्दी	हळदि
	शिक्षा	सिक्खा	सीख	सिक्कप

रूपों का विकास–संज्ञा

हिन्दी और कोंकणी के संज्ञाशब्दों में लिंग वचन एवं कारक के अनुसार अनेक परिवर्तन देखे जा सकते हैं। सरलीकरण की प्रवृत्ति में कई रूपों में परिवर्तन आ गए हैं। संस्कृत के तीन लिंग हिन्दी में आकर दो लिंगों में परिवर्तित हो गए हैं। कोंकणी आज भी तीनों लिंगों के साथ चलती है। अपभ्रंशकाल में नपुंसकलिंग शब्द बहुत कम हो गए थे और ऐसे शब्द या तो पुल्लिंग नहीं तो स्त्रीलिंग में परिवर्तित हो गए। संज्ञा के लिंग भेद मूल रूप से प्रत्ययों से सूचित होते हैं और हिन्दी तथा कोंकणी के ये प्रत्यय करीब समान कहे जा सकते हैं।

संस्कृत	**कोंकणी**	**हिन्दी**
लता	लता	लता
जिह्वा	जीभ	जीब
भिक्षा	भीख	भीक
मातृष्वसा	मौसी	मौसि
निःश्रेणी	निसेनी	निस्सणि
रुप्यकः	रुपया	रुप्पया

संस्कृत में जहाँ तीन वचनों का विधान मिलता है वहाँ हिन्दी और कोंकणी में वचन दो ही हैं। हिन्दी और कोंकणी में द्विवचन नहीं है। इन दोनों भाषाओं में वचनभेद प्रत्ययों के सहारे सूचित किया जाता है। हिन्दी एवं कोंकणी में पुल्लिंग बहुवचन रूप बनाने के लिए 'ए' प्रत्यय को जोड़ा जाता हैं।

संस्कृत	हिन्दी	**कोंकणी**
घोटकाः	घोड़े	घोड़े
कीटकाः	कीड़े	कीडे

हिन्दी के अन्य बहुवचन प्रत्यय हैं एँ, आँ या याँ और ओं या यों। इनका विकास क्रमशः संस्कृत 'एन', 'आनि' और 'आनाम्' से हुआ है। कोंकणी के अन्य बहुवचन प्रत्यय यानि, 'ओ', 'अ', 'इ', 'अँ' और 'आँ' का विकास भी हिन्दी प्रत्ययों की उत्पत्ति की तरह मानना उचित होगा।

हिन्दी—

एँ—लता-लताएँ, माता-माताएँ
याँ—लड़की-लड़कियाँ, बेटी-बेटियाँ
ओं—(तिर्यक रूप में) लड़के-लड़कों, बेटे-बेटों

कोंकणी—

अ—पूतु-पूत, देवु-देव
ओ—धूव-धुव्वो, सून-सुन्नो
इं—सूणें-सूणिं, केळें-केळिं
अँ—पान-पन्नँ, बोट-बोट्टँ
आँ—(तिर्यक रूप में) पूत-पुत्ताँ, सुन्नो-सुन्नाँ

कारक

हिन्दी एवं कोंकणी के कारक चिह्न भी मूलतः संस्कृत से ही विकसित हैं। ये इस प्रकार हैं—

	संस्कृत	**हिन्दी**	**कोंकणी**
कर्ता कारक	एन	ने	न
कर्म कारक	कृते	को	क
करण कारक	समं	से	-
	एन	-	च्यान
सम्प्रदान कारक	कृते	को	क
अपादान कारक	सकाड्यात्	से	सकून
सम्बन्ध कारक	कृत	का, के, की	-
	लग्न	-	लो, ली, लें
अधिकरण कारक	मध्ये	में	-
	अन्तः	-	आंतु
	उपरि	पर	रि

क्रिया

हिन्दी और कोंकणी की क्रियाओं का विकास मूलतः संस्कृत से हुआ है। फिर भी विकासक्रम में इन क्रियाओं में कई मौलिक परिवर्तन देखे जा सकते हैं। संस्कृत में क्रिया की रूप रचना बहुत जटिल रही। भाषा की सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण हिन्दी तथा कोंकणी में आकर क्रियारूपों की संख्या घटती गई। हिन्दी एवं कोंकणी में लिंग, वचन, काल, अर्थ एवं पुरुष के कारण क्रिया में विकार होता है। कोंकणी में तीन लिंग होने के कारण क्रियाओं के अधिक रूप पाए जाते हैं।

वर्तमान काल

	हिन्दी	**कोंकणी**
एकवचन अन्य पुरुष	वह खाता है वह खाती है	तो खत्ता (पुँल्लिंग) ती खत्ता (स्त्रीलिंग) तें खत्ता (नपुं.)
बहुवचन अन्य पुरुष	राम और कृष्ण खाते हैं	रामु आनी कृष्ण खत्ताय
उत्तम पुरुष एकवचन	मैं जाता हूँ	हाँव वत्ता
मध्यम पुरुष एकवचन	तू जाता है	तू वत्ता

यहाँ पर वर्तमान काल की क्रिया में जहाँ हिन्दी में लिंगानुसार क्रिया में परिवर्तन होता है वहाँ कोंकणी में इसका अभाव है। लेकिन वचन के बदलने पर क्रिया में भी परिवर्तन आ जाता है। जहाँ तक क्रियाओं के रूप का प्रश्न है हिन्दी तथा कोंकणी में काफी परिवर्तन देखे जा सकते हैं। यह एक अलग ही अध्ययन का विषय बन सकता है। क्रिया के विभिन्न कालों को लेकर दोनों भाषाओं में लिंग वचन के अनुसार रूप बनाए जा सकते हैं और उनकी तुलना भी हो सकती है। प्रस्तुत लेख में विस्तृत अध्ययन सम्भव नहीं है।

सर्वनाम

हिन्दी और कोंकणी सर्वनामों का विकास संस्कृत से होकर प्राकृत की राह से हुआ है। इस विकास की प्रक्रिया में हिन्दी एवं कोंकणी ने संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों को सरल बना दिया है। जैसे–

	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी	कोंकणी
1. पुरुषवाचक–				
उत्तम पुरुष–	अहम्	अम्ह	हौं, मैं	हाँव (एकवचन)
	अस्मे		हम	अम्मि (बहुवचन)
मध्यम पुरुष–	त्वम्	तुम्ह	तू, तुम	तूँ, तुम्मि
अन्य पुरुष–				
निश्चयवाचक–				
निकटवर्ती–	एषः	एअ	यह	व्हो(पु.) व्ही (स्त्री.)
	एते		ये	व्हें (न. पु.) व्हे (पु) व्हीं (न.पु. बहु.)
दूरवर्ती–	सः	सो	सो, वह	तो, ती, तें
			वे	ते त्यो तीं
अनिश्चयवाचक–	कोऽपि	कोवि	कोई	कोणइ
	किंचित्	किंचि	कुछ	-
2. निजवाचक–	आत्मन्	अप्पण	आप	अप्पण
3. सम्बन्धवाचक–	यः	जो	जो	जो
4. प्रश्नवाचक–	कः पुनः	कोउण	कौन	कोण
	किम्, कीदृश	किम्, केहो	क्या	कित्तें

विशेषण

विशेषणों के कई भेद हैं जैसे गुणवाचक, संख्यावाचक, परिमाणवाचक आदि। इनमें संस्कृत स्रोत की दृष्टि से संख्यावाचक विशेषणों का विकास-क्रम ही महत्वपूर्ण है। सभी आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में, खासकर हिन्दी एवं कोंकणी में संख्यावाचक विशेषणों के रूपों में ध्वनिगत समानता है। जैसे–

संस्कृत	प्राकृत	कोंकणी	हिन्दी
एक	एक्क	एक	एक
प्रथम	पढम	पहला	पुर्थमलो

हिन्दी और कोंकणी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ हैं जिनका विकास संस्कृत से हुआ है। विकासक्रम में दोनों भाषाएँ कुछ समान तत्वों को दर्शाती हैं। शब्दों एवं रूपों का विकासक्रम यह साबित करता है कि दोनों भाषाएँ एक दूसरे के बहुत निकट रही हैं। बाहरी तौर पर कुछ अन्तर तो अवश्य दिखाई देता है, फिर भी आन्तरिक दृष्टि से मूलतः ये एक ही हैं। संस्कृत की कालगत परिणति में दोनों का विकास देखा जा सकता है। यही इनकी मूलभूत एकता है।

देशी नाममाला और कोंकणी शब्दावली

आचार्य हेमचन्द्र विरचित देशी नाममाला का आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के विकास के प्रसंग में अत्यधिक महत्व रहा है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में दिखाई पड़ने वाले देशी शब्दों का वास्तविक इतिहास यहीं से शुरू होता है। देशी नाममाला के अनेक शब्दों से आधुनिक आर्यभाषाओं के कई शब्द विकसित हुए हैं। देशी नाममाला हेमचन्द्र के द्वारा करीब बारहवीं शती में गुजरात में रची गई थी। यही पहला ग्रन्थ रहा जिसमें सर्वप्रथम देशी शब्दों का प्रयोग एवं संकलन किया गया। उस समय भारत में संस्कृत या प्राकृत नानाजातियों के सम्मिलन से प्रस्फुटित नूतन संस्कृति का वाहक न बन सकी थी और बदली हुई आन्तरिक परिस्थितियों को अभिव्यक्ति देने के लिए देशी भाषा का अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा था। देशी नाममाला में हेमचन्द्र ने इसी भाषा के शब्दों का संकलन किया है। इसमें कुल मिलाकर 3978 शब्द मिलते हैं जिन्हें हेमचन्द्र ने काफी व्यापक भूभाग में प्रचलित लोकशब्दों से एकत्रित किया है।

लोकभाषा प्रेमी हेमचन्द्र ने देशी नाममाला में प्रथम बार देशी शब्दों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। इन शब्दों का आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के विकास के प्रसंग में ध्वनि एवं अर्थ की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। आधुनिक आर्यभाषाओं में इन शब्दों के कई विकसित रूप प्राप्त होते हैं। कोंकणी भी इसका अपवाद नहीं है। कोंकणी में प्रयुक्त करीब दो सौ शब्द देशी नाममाला में प्राप्त शब्दों के प्रतिरूप हैं या उनसे विकसित

रूप हैं। देशीनाममाला और कोंकणी के बीच का यह सम्बन्ध कोंकणी शब्दों के विकास के इतिहास का एक नया अध्याय खोल देता है।

लिंग्वा ब्रह्मानिका

यों तो कोंकणी भारत के दक्षिणी प्रदेशों में बोली जानेवाली आर्यभाषा परिवार की एक भाषा है। यह मुख्य रूप से गोवा, कोंकण, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल आदि देशों में बोली जाती है। उत्तर में जन्म लेकर दक्षिण में विकास को प्राप्त इस भाषा का परम्परागत महत्व अक्षुण्ण रहा है। कोंकणी की शब्दावली इसका ज्वलन्त प्रमाण है। अपने प्राचीनतम रूप में कोंकणी का सम्बन्ध मूल रूप से ब्राह्मण वर्ग से रहा है। आज भी केरल में कोंकणी बोलनेवाले लोगों में अधिकतर लोग ब्राह्मण ही रहे हैं। ब्राह्मणों की भाषा होने के नाते यह भाषा लिंग्वा ब्रह्मानिका भी कही जाती थी। ब्राह्मणों की भाषा होने के कारण संस्कृत से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की तुलना में यह संस्कृत के सर्वाधिक निकट रही है। कोंकणी की यह प्राचीनता और संस्कृत से सम्बन्ध निर्विवाद है। विद्वानों के मतानुसार सारस्वत ब्राह्मण भारत के सबसे प्राचीन अधिवासी रहे हैं। और उनकी भाषा भी तब से लेकर अब तक विकासशील एवं अनेक परिवर्तनों का साक्षी रही है। वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और न जाने किन-किन अवस्थाओं से गुजरती हुई यह प्राचीन भाषा आज भी जीवन्त और आधुनिक आर्यभाषाओं की सूची में गिनाई जाती है। इस भाषा की शब्दावली में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश सभी शब्द अपरिवर्तित या किंचित् परिवर्तित रूपों में प्राप्त होते हैं जो इसकी परम्परागत महत्ता को प्रमाणित करते हैं।

कोंकण और कोंकणी

कोंकण देश में बोली जाने के कारण ऊपर कही गई ब्राह्मणों की भाषा को कोंकणी नाम मिल गया है। ग्रियर्सन के मत में यह संज्ञा अधिक प्राचीन नहीं है। उनके मत में यह मराठी की एक बोली है जो उत्तर में मालवा से लेकर दक्षिण में कारवार तक कोंकण प्रदेश में बोली जाती है। वे इसकी उत्पत्ति महाराष्ट्री प्राकृत से मानते हैं। भले ही महाराष्ट्री प्राकृत

से उद्भूत इस बोली को कोंकणी नाम दिया जाए, फिर भी यह बात निश्चित है कि कोंकणी नाम से आज भारत के दक्षिणतम प्रदेशों में बोली जाने वाली इस भाषा में ऐसे अनेक शब्द प्राप्त होते हैं जो इसके स्वतन्त्र अस्तित्व एवं प्राचीनतम रूप को प्रकट करते हैं।

कोंकण बहुत प्राचीन देश रहा है। महाभारत, स्कन्दपुराण, प्रपंचहृदय आदि ग्रन्थों में कोंकण शब्द एवं देश का संकेत प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण के सह्याद्रि खण्ड के अनुसार यह देश परशुराम द्वारा निर्मित है और सात भागों में विभक्त है। प्रपंचहृदय भी इसी का समर्थन करता है। पुराणों को आधार मानकर जोस निकोला ने भी कोंकण के सात विभाग माने हैं जो इस प्रकार है—केरल, तुलुंगु, गोवर्षत्र, कोंकण, करालट, वरालट और बर्बर। इनमें से वरालट दक्षिणी गुजरात के कुछ भागों को कहा गया है और बर्बर देश कातियावाड के कुछ पर्वतीय भाग हैं। इस प्रकार कोंकण प्राचीनकाल में कन्याकुमारी से लेकर कात्तियावाड तक व्याप्त था। कोंकण की भाषा कोंकणी भी बहुत प्राचीन थी और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व था। भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं भाषावैज्ञानिक पर्यवलोकन से यह प्रकट हुआ है कि कोंकण का पुराणकाल से ही स्वतन्त्र अस्तित्व रहा है।

सारस्वतों के प्रवसन या देशांतरण का विवरण देते हुए श्री कुड्वा का कहना है कि यह प्राचीनतम जाति पंजाब में रहती थी और वहां से प्रवसित होते होते भारत के पश्चिमी तट देशों से होकर गोवा तक पहुंच गई। उनके मत में आज भी गुजरात के कुछ भागों में सारस्वत ब्राह्मणों को देखा जा सकता है। केरल में कोंकणी बोलनेवाले गौड सारस्वत ब्राह्मण अपने वर्तमान से ही अपने उत्तरी दाय को व्यक्त करते हैं। गौड शब्द उनके भारत के उत्तरीभागों में रहने का सूचक है। गुजरात उनका परिचित देश रहा है। कातियावाड़ में प्रभासतीर्थ का संकेत इसका प्रमाण है। यही नहीं कोंकणी में गुजराती के कई शब्द भी प्राप्त होते हैं और प्राचीन गुजराती शब्दों से कोंकणी के शब्द अधिक मिलते हैं।

गुर्जर अपभ्रंश और कोंकणी शब्दावली

गुजरात प्राचीनकाल से ही अपभ्रंश के लिए प्रसिद्ध रहा है। भोजदेव का कहना है कि गुर्जर लोग केवल अपभ्रंश से ही सन्तुष्ट होते थे। अपभ्रंशेन

तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गुर्जराः—तत्कालीन देशी भाषा का उस स्थान पर सर्वाधिक प्रयोग होता था। "पश्चिमेन अपभ्रंशिनः कवयः" वाली राजशेखर की उक्ति भी इसी का समर्थन करती है। विद्वानों के अनुसार दसवीं-ग्यारहवीं शती की अपभ्रंश शुद्ध गुर्जर अपभ्रंश रही है। गुप्त युग से लेकर इसका बड़ा प्रचार रहा। कोंकणी शब्दावली का इस अपभ्रंश से विशेष संबन्ध रहा है। देशीनाममाला के रचयिता हेमचन्द्र भी गुजरात के निवासी थे। उन्होंने अपनी देशीनाममाला में ऐसे शब्दों का संकलन किया जिनका प्रयोग उस समय की बोलचाल की भाषा में ही होता रहा होगा, यह बात सहज ही सोची जा सकती है। इस प्रकार बोलचाल में प्रचलित भाषा के शब्दों को उन्होंने देशी शब्दों के नाम से अभिहित किया है। उनके अनुसार देश विशेष में अनादिकाल से बोली जाने वाली अनेक भाषाएँ हैं और इन भाषाओं के शब्द सीमा से परे हैं। देशीनाममाला के शब्दों से कोंकणी शब्दावली का सम्बन्ध भी इसी तत्व की पुष्टि करता है।

देशी नाममाला और कोंकणी शब्दावली

कोंकणी में प्राप्त देशीनाममाला के शब्दों को मुख्यतः दो प्रकार से विभाजित किया जा सकता है—संस्कृत स्रोत से उत्पन्न और संस्कृतेतर स्रोत से उत्पन्न। पहले वर्ग के अंतर्गत तत्सम एवं तद्भव शब्द आते हैं, जैसे कट्टारी, चित्तल, चिक्खली, चक्कलं, बेढ़िअं, णीसणिआ इत्यादि। दूसरे वर्ग के अंतर्गत संस्कृतेतर स्रोत के शब्द आते हैं जिनका स्रोत या तो द्राविड़ होता है या विदेशी या स्वच्छ देशज जैसे, करिल्लं, कोल्हुओ, काहल्ली, खड्डं, खणुसा, खुंपा, गोंडी, छाणं आदि।

देशीनाममाला के कई शब्द कुछ नगण्य परिवर्तनों के साथ कोंकणी में पाये जाते हैं। कई शब्दों में रूपगत समानता भी दर्शनीय है। लेकिन इनमें या तो अर्थसंकोच मिलता है या अर्थ व्याप्ति। स्वरलोप, व्यंजनलोप, स्वरागम आदि तो सहज ही पाये जाते हैं। प्रायः सभी शब्दों में अर्थसंकोच या अर्थविस्तार पाया जाता है। कुछ अनुरणनात्मक शब्द भी दोनों में समान रूप से पाये जाते हैं। संबन्ध को सूचित करने वाले कई कोंकणी शब्दों का मूल रूप भी देशीनाममाला में मिला जाता है। नीचे दिये जानेवाले उदाहरणों से यह बात व्यक्त हो जाएगी।

देशीनाममाला और कोंकणी में रूपगत समानता को लेकर चलने वाले शब्द हैं–

दे. ना.	कोंकणी	दे. ना.	कोंकणी
अज्जो	अज्जो	चुलचुलइ	चुळचुळेंवॅपॅ
अक्का	अक्का	चक्कलं	चक्कळॅ
अप्पा	अप्पा	डावो	दावो
उडिदो	उडीदु	दोग्गं	दोग्गँ
ओप्पा	ओप	पिंडी	पिंडि
गोंडी	गोंडि	पोट्टं	पोटॅ
चाडी	चाड़ि	पक्को	पक्को
चंग	चाँगॅ	दोरो	दोरु
चिलिच्चीलं	चिळ्चीळॅ	रूवी	रूवॅ

अर्थपरिवर्तन

इन शब्दों में अधिकांश शब्द अर्थ की दृष्टि से परिवर्तित हुए हैं। देशी नाममाला में 'अज्जो' शब्द का प्रयोग स्वामी के पर्याय के रूप में होता है। यह शब्द कहीं-कहीं मंगलार्थ का भी सूचक है। कोंकणी में भी इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अवश्य होता है जैसे 'भट्टज्जो'। यह संस्कृत के 'आर्यः' का ही अपभ्रष्ट रूप कहा जा सकता है। लेकिन कोंकणी में इस शब्द का प्रयोग दादा या नाना के अर्थ में भी प्राप्त होता है। वैसे ही कोंकणी में 'अक्का' शब्द में अर्थ-संकोच देखा जा सकता है। देशी नाममाला में जहाँ यह शब्द भगिनी के अर्थ में दिया गया है वहाँ कोंकणी में इसका प्रयोग केवल बड़ी बहन के लिए किया जाता है। 'चाडि' शब्द में पूर्णतः अर्थपरिवर्तन देखा जा सकता है। देशी नाममाला में मायावी के अर्थ में प्रयुक्त यह शब्द कोंकणी में अपवाद या अपकथन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वैसे ही 'चक्कल' का अर्थ जहाँ देशी नाममाला में वर्तुल है वहाँ कोंकणी में इसका प्रयोग वृत्ताकार बुताम या घुण्डी के लिए प्रयुक्त होता है। 'गोंडी' और 'पिंडी' शब्द जहाँ देशी नाममाला में मंजरी के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं वहाँ कोंकणी में 'गोंडी' का अर्थ है नारियल की मंजरी और 'पिंडी' का अर्थ है फूस का गोलाकार गद्दा। इन शब्दों को छोड़कर

ऊपर दिए गए सभी शब्द दोनों में समानार्थवाची हैं। शब्दों की यह समानता ग्यारहवीं-बारहवीं शती की भाषा एवं कोंकणी शब्दावली के आपसी सम्बन्ध की सूचना देती है।

कोंकणी में कौटुम्बिक सम्बन्ध को दिखानेवाले कई शब्द देशीनाममाला के शब्दों से मिलते हैं—जैसे

कोंकणी	दे. ना.
भावु (भगिनी पतिं)	भाओ
भावॅजॅ (भ्रातृजाया)	भावुज्जा
मेव्णि (भार्याभगिनी)	मेहुणिया
व्होन्नि (ज्येष्ठ भार्या)	वहुणी
अव्वॅयि (माता)	अव्वा आदि।

पारिवारिक रीतिरिवाज को दिखानेवाले कोंकणी शब्दों में भी देशीनाममाला के शब्दों से समानता दिखाई जा सकती है। संस्कृत का 'वर' देशीनाममाला में 'वरइत्त' के रूप में प्राप्त होता है जिसका विकसित रूप कोंकणी के 'व्होरेतु' (वर) में मिलता है।

वेशभूषा और खान-पान से सम्बन्धित शब्द भी देशी नाममाला में किंचित् ध्वनिपरिवर्तन के साथ कोंकणी में देखे जा सकते हैं जैसे (दे.ना.) 'मुद्दिआ'-(कों) 'मुद्दि' (आभूषण); (दे.ना.) 'ककवासों'-(कों) 'कक्कम्बी' (खान-पान); (दे.ना.) 'रोट्ट'-(कों) 'रोंटस्' (खान-पान) आदि।

कई अनुरणनात्मक शब्द भी देशी नाममाला एवं कोंकणी में समानता लिए हुए हैं, जैसे—

कोंकणी	दे. ना.
चिळ्चीळें	चिलिच्चीले (आर्द्र)
चुळ्चुळेंवॅपॅ	चुलुचुलइ (स्पन्दन)
व्हिळ्व्हीळि	विलिव्विली (कोमलता)

ध्वनिपरिवर्तन

देशी नाममाला में प्राप्त शब्दों का 'छ' कार कोंकणी में 'श' कार में परिवर्तित होता है जैसे—

(दे. ना.) छाणं > शेणॅ (कों)

(दे. ना.) छेडा > शेण्डो (कों) और 'न' का 'ण' में 'ट' का 'थ' में और 'ड' का 'द' में भी परिवर्तन देखा जा सकता है, जैसे–

(दे. ना.) टुंटो > थोंटो (कों)
(दे. ना.) डावो > दावो (कों)
(दे. ना.) खानि > खाणि (कों)

देशी नाममाला से विकसित कोंकणी शब्दों में स्वरलोप एवं स्वरागम तथा व्यंजन लोप एवं व्यंजनागम अक्सर पाए जाते हैं। कहीं कहीं ह्रस्व स्वरों का दीर्घीकरण एवं दीर्घ का ह्रस्वीकरण, स्वरविपर्यय एवं व्यंजन-विपर्यय, सानुनासिकता आदि देखा जा सकता है, जैसे–

	दे. ना.	**कोंकणी**
स्वरलोप–	णीसणिआ	निस्सॅणि
	तद्दिअसं	तेद्दूसॅ
	ऊआ	ऊ
	किविडो	कव्डि
स्वरागम–	पिल्हं	पीलॅ
	अव्वा	अव्वॅयि
	खुंपा	खोंपि
	मडो	मोडें
स्वरविपर्यय–	करिल्लं	कील्लु
ह्रस्वीकरण–	ऊसयं	उस्सें
	गोंडी	गोंडि
	पिंडी	पिंडि
दीर्घीकरण–	चुडुली	चूडि
	तुप्प	तूप
	पोट्टं	पोट
	ओप्प	ओप
	चंगं	चाँगँ
सानुनासिकता–	चूओ	चींवों
	खणुसा	खोण्सॅ
	रोट्टं	रोंटॅसॅ

व्यंजनलोप एवं व्यंजनागम–	कोल्हुओ	कोल्लो
	एद्दहं	एद्दें
	माउच्छो	मोउ

देशी नाममाला में संकलित शब्द-सम्पत्ति ने अपने अन्दर सदियों से चली आती हुई जनसाधारण की संस्कृति को संजो रखा है। इस कारण से इन शब्दों का सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक दृष्टियों से बहुत बड़ा महत्व है। लौकिक जीवन में अनेक ऐसे रीतिरिवाज मिलते हैं जो उस समय प्रचलित थे और इस समय में भी प्रचार में हैं। देशी नाममाला की शब्दावली और कोंकणी शब्दावली की समानता इसी बात को व्यक्त करती है। देशी शब्द साधारण या शिक्षित समाज की बोलचाल के शब्द रहे हैं जिनके माध्यम से युग-युग से जीवित समाज एवं उसकी मान्यताओं का स्पष्ट चित्र सामने आ जाता है। सामाजिक सम्बन्धों की सूचक देशी नाममाला और कोंकणी शब्दावली की समानता इस बात को प्रमाणित करती है कि कोंकणी समाज बारहवीं शती के उस समाज से बहुत कुछ मिलता है जिस समाज में हेमचन्द्र जीवित थे। हेमचन्द्र के समय के साधारण जनवर्ग की संस्कृति जो देशीनाममाला के शब्दों में प्रतिफलित होती है, वही संस्कृति बिना किसी परिवर्तन के आज भी कोंकणी बोलनेवाले ब्राह्मणों की संस्कृति में भी प्रतिफलित होती है। यह दोनों में पाए जानेवाले शब्दों की समानता से स्पष्ट होता है। इन सबसे बढ़कर देशी नाममाला एवं कोंकणी शब्दावली की समानार्थकता इस बात का प्रमाण है कि कोंकणी में पाए जाने वाले अनेक देशी शब्दों का विकास देशीनाममाला में पाए जाने वाले मूल शब्दों से हुआ है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों में पाए जाने वाले शब्दों का सूक्ष्म अध्ययन इस बात को स्पष्ट करता है कि कोंकणी के देशी शब्दों का मूल देशी नाममाला में पाए जानेवाले शब्दों में ही वर्तमान है।

हिन्दी और कोंकणी के संख्यावाचक शब्द और उनका अनुवाद

हिन्दी और कोंकणी एक ही परिवार की भाषाएँ हैं। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी ये परस्पर सम्बद्ध हैं। इनका विकास एक ही मूल भाषा से हुआ है। अन्तर केवल इतना है कि विकास के लम्बे दौर में हिन्दी कुछ आगे निकल चुकी है और कोंकणी अभी अपनी पूर्वावस्था के निकट है। अनुवाद की दृष्टि से इन दोनों भाषाओं को देखें तो अनुवाद में ज्यादा कठिनाई न होने की सम्भावना है। विशेषकर संख्यावाचक शब्दों के अनुवाद में यह कार्य अत्यधिक सरल बन सकता है क्योंकि संख्यावाचक शब्दों के विकास का इतिहास हिन्दी और कोंकणी में अधिक समानता लिए हुए है। इसलिए अनेक शब्दों के रूप भी काफी समान रहे हैं। उदाहरण के लिए–

1. पुलिस ने **दो** चोरों को पकड़ा (हिन्दी)
   पुलिसान **दोनि** चोरांक धरले (कोंकणी)
2. उसमें से **दूसरा** पुलिस के हाथ से छूट गया (हिन्दी)
   तूंतूलो **दुस्सेरो** पुलिसा हाथां सून सुंटलो (कोंकणी)
3. गायें **एक एक** करके बाहर आयीं (हिन्दी)
   गय्यो **एक्केकि** करून भायर आयल्यो (कोंकणी)
4. वह गाँव **अकेले** गया (हिन्दी)
   तो गावाँत **एकलो** गेल्लो (कोंकणी)

ऊपर दिए गए चार वाक्यों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो हम

इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि यों तो हिन्दी और कोंकणी में अनुवाद सरल और आसान है क्योंकि यहाँ पर अधिकांश शब्दरूप समान हैं। जहाँ तक संख्यावाचक शब्दों का प्रश्न है यह और भी सरल रहता है क्योंकि यहाँ पर एक दो बातों को छोड़कर (लिंग, वचन, आदि) इन शब्दों में समानता अधिक और अन्तर कम है। इसका मूल कारण यह है कि दोनों भाषाओं ने अपने संख्यावाचक शब्दों के लिए मूलतः संस्कृत का ही सहारा लिया है। हिन्दी और कोंकणी संख्यावाचक शब्दों के विकास के इतिहास में यहाँ वहाँ कुछ भिन्नताओं को छोड़कर अधिकतर समानताएँ ही मिलती हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए हम संख्यावाचक शब्दों का वर्गीकरण करते हुए उनके विकास एवं अनुवाद की दृष्टि से उनकी सरलता पर आगे विचार करेंगे।

हिन्दी और कोंकणी के संख्यांक

हिन्दी और कोंकणी दोनों भाषाओं में 'एक' से 'दस' तक सरल संख्यावाचक शब्दों का प्रयोग होता है। 'ग्यारह' से ऊपर समस्त पदों का और 'सौ' के ऊपर अलग-अलग संख्याओं का प्रयोग होता है। इन सबका विकास संस्कृत से हुआ है। जैसे–

संस्कृत	हिन्दी	कोंकणी
एक	एक	एक
द्विव	दो	दोनि
त्रि	तीन	तीनि
चतुर्	चार	चारि
पंच	पाँच	पाँच
षट्	छः	स
सप्त	सात	सात
अष्ट	आठ	आट
नव	नौ	णव्व
दश	दस	धा

इन संख्यावाचक शब्दों में एक, पाँच, सात, आठ हिन्दी और कोंकणी में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं। बाकी शब्दों का किंचित् परिवर्तन के

साथ प्रयोग मिलता है। फिर भी ये समान मूल को दिखाते हैं। जहाँ तक अनुवाद का प्रश्न है इनमें कुछ समस्याएँ देखी जा सकती हैं। हिन्दी और कोंकणी के ये संख्यांक विशेषण के रूप में अक्सर प्रयुक्त होते हैं। इस प्रयोग के दौरान दोनों भाषाओं की अलग-अलग प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं और इस प्रकार इन संख्यांकों में भी परिवर्तन आ जाता है। उदाहरण के लिए हिन्दी में दो लिंग और कोकणी में तीन लिंग हैं। सामान्य रूप से संज्ञा के लिंग के अनुसार विशेषण बदलता रहता है। लेकिन हिन्दी में संस्कृत से आए हुए शब्दों में यह प्रवृत्ति दिखाई नहीं पड़ती। फलतः एक लड़का, लिंग के परिवर्तन में एक लड़की, बन जाता है। यहाँ पर विशेषण (संख्यांक) में परिवर्तन नहीं होता। लेकिन कोंकणी की बात अलग है। वहाँ पर लिंग के अनुसार संख्यांक में परिवर्तन देखा जाता है। जैसे एकु चेल्लो (एक लड़का), एकि चेल्लि (एक लड़की), एक सूणें (एक कुत्ता) यहाँ पर पुल्लिंग स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग के प्रत्यय संख्यांक के साथ जुड़ते हैं। एक को छोड़कर कोंकणी में बाकी संख्यांक हिन्दी के समान हैं। यहाँ पर विशेष्य के अनुसार परिवर्तन नहीं होता। जैसे–

हिन्दी	**कोंकणी**
दो लड़के	दोनि चेल्ले (पुल्लिंग)
दो लड़कियाँ	दोनि चेल्लियो (स्त्रीलिंग)
दो कुत्ते	दोनि सूणिं (नपुंसकलिंग)

इस प्रकार 'एक' हिन्दी और कोंकणी में अनुवाद सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न करता है। लेकिन 'दो' में यह समस्या नहीं है। यह अनुवाद की दृष्टि से बिल्कुल सरल है। वैसे तो दो, से लेकर चार, तक हिन्दी और कोंकणी के संख्यांकों में थोड़ा-सा अन्तर पाया जाता है। हिन्दी में ये शब्द व्यंजनांत हैं बल्कि कोंकणी में स्वरांत हैं। नौ, और णव्व, में दन्त्य और मूर्धन्य ध्वनियों का अन्तर देखा जा सकता है। हिन्दी दस, और कोंकणी धा, बिलकुल भिन्न लगते हैं. फिर भी दोनों का मूल एक ही 'दश' है। संस्कृत के 'दश', का विकास दोनों में अलग-अलग दृष्टियों से देखा जा सकता है। हिन्दी में दश दस बनता है तो कोंकणी में स, के बदले ह, का प्रयोग होता है। इस प्रकार दश दह धा। हिन्दी में भी दस, के बदले दह, का प्रयोग होता है जैसे चौदह, पन्द्रह, आदि में। जैसे :–पंचदश> पंचदह>पनदरह>पंद्रह. कोंकणी में पंद्रह

के बदले पन्नरा मिलता है। थोड़ा-सा अन्तर जो दिखाई पड़ता है वह क्रमिक विकास के कारण हुआ है। दोनों का मूल एक ही है। शेष संख्याओं में दोनों भाषाओं में अधिक समानताएँ हैं। भिन्नताएँ कम हैं। जैसे–

संस्कृत	हिन्दी	कोंकणी
विंशति	बीस	वीस
त्रिंशत्	तीस	तीस
चत्वारिंशत्	चालीस	चालीस
पंचाशत्	पचास	पन्नास
षष्टि	साठ	साटि
सप्तति	सत्तर	सत्तेरि
अशीति	अस्सी	अस्सीं
नवति	नब्बे	णवि
शत	सौ	शें

इन संख्यांकों में एक दो को छोड़कर शेष सभी में समानता दिखाई पड़ती है। 'पंचाशत्' से 'पचास' के विकास में कोंकणी का 'पन्नास' हिन्दी के 'पचास' की पूर्वावस्था को ही दिखाता है जो इस बात का प्रमाण है कि कोंकणी अब भी विकास की उसी अवस्था में है और हिन्दी उससे कहीं आगे निकल गई है।

हिन्दी और कोंकणी के क्रमवाचक शब्द

स्रोतगत समानता से हिन्दी और कोंकणी के क्रमवाचक शब्द बहुत कुछ समानता लिए हुए हैं। जैसे–

संस्कृत	हिन्दी	कोंकणी
प्रथमः	पहला	पैलो, पुर्थमलो
द्वितीयः	दूसरा	दूसरो
तृतीयः	तीसरा	तिसरो
चतुर्थः	चौथा	चौतो
पंचमः	पाँचवाँ	पंचवो
षष्ठः	छठा	सट्टो
सप्तमः	सातवाँ	सत्तवो



अष्टमः	आठवाँ	अट्टवो
नवमः	नवाँ	णव्वावो
दशमः	दसवाँ	धावो

ये शब्द हिन्दी और कोंकणी में विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं और लिंगानुसार इनमें परिवर्तन भी आता है। ऊपर दिए गए शब्दों में हिन्दी शब्दों के साथ पुल्लिंगवाचक 'अ' और कोंकणी शब्दों के साथ पुल्लिंगवाचक 'ओ' जोड़ा गया है। स्त्रीलिंग शब्दों के साथ लिंग को सूचित करने के लिए 'इ'जोड़ा जाता है। जैसे–

लड़के ने तीसरी सीढ़ी से नीचे छलांग मारी (हिन्दी)

चेल्यान तिस्सरे मेटारि सुकून खाल उड्कि मारली (कोंकणी)

इस वाक्य में सीढ़ी स्त्रीलिंग है और उसका विशेषण तीसरी भी स्त्रीलिंग है। लेकिन कोंकणी में सीढ़ी का समानार्थक शब्द है मेट। यह नपुंसकलिंग में हुआ। जब तक अनुवाद करनेवाला व्यक्ति इस प्रयोग से अच्छी तरह अवगत नहीं रहता तब तक यह अनुवाद कठिन लग सकता है, यद्यपि तीसरा शब्द हिन्दी और कोंकणी में भले ही समान रूप में प्रयुक्त होता हो।

संस्कृत का प्रथमः प्रथमर् पदमल् पहमल् पहल अ बन जाता है। यह हिन्दी और कोंकणी में समान रूप से मिलता है। हाँ, लिंगवाचक प्रत्ययों में अन्तर अवश्य रहा है। दूसरा और तीसरा क्रमशः संस्कृत के द्विश्रेण्यः और त्रिश्रेण्यः से उत्पन्न हैं। चतुर्थ से चदुत्थ चउत्थ चौथा बनकर हिन्दी और कोंकणी में प्रयुक्त होता है। यहाँ पर दोनों भाषाओं में थोड़ा-सा ध्वनिगत अन्तर है। हिन्दी की महाप्राण ध्वनि कोंकणी में अल्पप्राण बन जाती है। पाँचवाँ से दसवाँ, तक छठा को छोड़कर सभी रूप समान हैं। अपभ्रंश में 'म' का 'वाँ' बनता है और इसी नियम पर पंचमः पाँचवाँ बनता है। कोंकणी में यहाँ पर अनुनासिक का लोप हो जाता है। अन्यथा दोनों भाषाओं में शब्द समान रहे हैं।

व्यष्टिवाचक संख्याएँ

डॉ. उदयनारायण तिवारी ने इसकी संज्ञा प्रत्येकवाचक रखी है। इनका प्रयोग हिन्दी और कोंकणी में संज्ञाओं के विशेष योग को दिखाने के लिए किया जाता है। जैसे–

"दो दो, चार-चार, दस-दस" आदि। कोंकणी में इनका खूब प्रयोग है जैसे "दोन्दोनि, चच्चारि, धधा" आदि अन्तर इतना है कि हिन्दी में संख्यावाचक शब्द परिवर्तन के बिना साथ-साथ रहते हैं। कोंकणी में पहले प्रयुक्त शब्द का अन्तिम स्वर लुप्त हो जाता है। जैसे–दोनि + दोनि = दोन्दोनि धा + धा = धधा। अनुवाद करते समय इस अन्तर पर विशेष ध्यान देना होता है।

एक एक करके सभी लड़के चले गए (हिन्दी)

एक्केक करून सग्ग चेल्ले गेल्ले (कोंकणी)

भिन्नात्मक संख्यायें < इन्हें अपूर्ण संख्यावाचक भी कहते हैं जिनसे संख्या के किसी भाग का बोध होता है। इनमें प्रमुख हैं, पाव, आधा, पौना आदि। पाव की उत्पत्ति संस्कृत पाद, से हुई है। कोंकणी में भी यह शब्द चलता है। पाद के साथ स उपसर्ग जोड़ने से सपाद और पाद के साथ ऊन प्रत्यय जोड़ने से पादोन शब्द बनते हैं जिनसे क्रमशः हिन्दी और कोंकणी के सवा और सवाय मिलते हैं। वैसे तो पादोन, से हिन्दी में पौन और कोंकणी में पौणे, शब्द मिलते हैं। ये दोनों एक ही स्रोत को दिखाते हैं।

हिन्दी	**कोंकणी**
सवा एक	सवाय एक
सवा दो	सवाय दो
सवा पाँच	सवाय पाँच
सवा दस	सवाय धा

संस्कृत का अर्द्ध हिन्दी में आधा बन जाता है। लेकिन कोंकणी में यह अड्द है। स + अर्द्ध हिन्दी में आधा बन जाता है। लेकिन कोंकणी में यह अड्द है। स + अर्द्ध हिन्दी में साढ़े बन जाता है और कोंकणी में साड्द बन जाता है। हिन्दी के 'साढ़े ग्यारह' कोंकणी में 'इक्खरा साड्द है। हिन्दी का 'डेढ़' कोंकणी में 'देड' है जिस की व्युत्पत्ति संस्कृत द्विव-अर्द्ध से हुई है। 'अर्द्धतृतीया' से हिन्दी आढ़ाई और कोंकणी अड्डेच बनते हैं। लेकिन हिन्दी के साढ़े चार और साढ़े पाँच कोंकणी में चव्वड और पंचड बन जाते हैं। यहाँ पर रूपनिर्माण में थोड़ी भिन्नता पाई जाती है। कोंकणी में चार और पाँच के साथ सार्द्ध के बदले अर्द्ध ही जुड़ता है। जैसे चारि + अड = चव्वड।

संख्यात्मक क्रिया विशेषण

हिन्दी और कोंकणी में इनका प्रयोग संख्या के साथ विभिन्न प्रकार के शब्दों को जोड़ते हुए होता है। जैसे–

मैंने राम को दो बार देखा (हिन्दी)

हाँवे रामाक दोनि फन्ता देक्कीलो (कोंकणी)

एक तरह से तेरा मौन रहना अच्छा हुआ (हिन्दी)

एक वटेन तू मौन असलो चाँग जालें (कोंकणी)

दोनों भाषाओं में ये शब्द संख्या के साथ समान रूप से जुड़ जाते हैं। इस समान प्रवृत्ति के कारण इनका अनुवाद भी आसान हो जाता है।

चान्द्रमास की विभिन्न तिथियाँ

हिन्दी और कोंकणी में तिथियों का नाम करीब करीब समानता लिए हुए है। एक ही स्रोत से उत्पन्न होने के कारण इनका रूप विकास भी थोड़ा बहुत समान है। नीचे दिए गए तिथियों के नामों से यह स्पष्ट हो सकता है।

संस्कृत	**हिन्दी**	**कोंकणी**
प्रतिपद	परिवा	पडवो
द्रिवतीया	दूज	बी
तृतीया	तीज	तयि
चतुर्थी	चौथ	चव्वति
पंचमी	पंचमी	पंचमि
षष्ठी	छठी	सष्टि
सप्तमी	सप्तमी	सप्तमि
अष्टमी	आठे	अष्टमि
नवमी	नवमी	नवमि
दशमी	दसमी	दस्समि
एकादशी	ग्यारस	एकादशि
द्रवादशी	बारहीं	दुव्वादशी
त्रयोदशी	तेरस	तरयोदशी
चुतर्दशी	चौदस	चतुरदशि

पौर्णमी	पूनिउ	पुन्नव
अमावासी	अमावस	उम्मास

संस्कृत से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में आए हुए शब्द भण्डार की सामान्यतः यह विशेषता रही है कि इनमें अधिकांश शब्द परिवर्तन के शिकार हुए हैं। इसके मूल में सरलीकरण की प्रवृत्ति प्रमुख रूप से काम करती दिखाई देती है। ऊपर दिए गए संख्यावाचक शब्दों में यह स्पष्ट है। कोंकणी के क्रमशः पडवो, बी, तयि, हिन्दी में परिवा, दूज, तीज बनने में यही प्रवृत्ति काम करती है। इसके अतिरिक्त ध्यान देने की बात यह है कि जहां पर द्वितीय के लिए हिन्दी ने 'द' को प्रमुखता देकर 'दूज' को स्वीकार किया वहां पर कोंकणी ने 'व' को प्रमुखता दी। 'व' का 'ब' में परिवर्तन प्राकृतों के लिए सहज ही है। वैसे कोंकणी का 'बी' आ गया है। वैसे तो संस्कृत के द्विवतीय तृतीय शब्दों का या, हिन्दी में ज, बन गया (अपभ्रश की प्रवृत्ति) तो कोंकणी में वह सुरक्षित रहा जैसे 'तयि'। सभी शब्दों में संस्कृत का अन्तिम दीर्घस्वर कोंकणी में ह्रस्व बन जाता है। यह भी उच्चारण की सुविधा को दृष्टि में रखकर किया जाता है। अमावासी, उम्मास बनता है तो यहाँ पर कोंकणी में स्वरमध्यग व विरले ही सुरक्षित रहता है। महानवमि > महानमि में यह स्पष्ट है। प्रारम्भिक 'अ' हमेशा 'उ' में परिवर्तित होने की प्रवृत्ति भी कोंकणी में अक्सर देखी जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी और कोंकणी के संख्यावाचक शब्द अधिकांशतः समान रहे हैं। दोनों भाषाओं के शब्द यह प्रमाणित कर देते हैं कि इनका मूल एक ही है। अन्तर केवल इतना है कि जहां हिन्दी के रूप अपभ्रंश के रूपों के अधिक निकट हैं तो कोंकणी के रूप प्राकृत के शब्दरूपों से अधिक मिलते हैं। इन रूपों के विकास की प्रक्रिया दोनों भाषाओं में एक ही नियम के अधीन नहीं कही जा सकती। इस कारण से इनके अनुवाद में भी कहीं कहीं समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। दोनों भाषाओं में दिखाई पड़नेवाली इन भिन्नताओं को विशेष तौर पर ध्यान में रखा जाए तो इस समस्या का समाधान हो सकता है।

आधुनिक हिन्दी तथा कोंकणी कविता--एक परिदृश्य

भारत एक बहुभाषा भाषी देश है। यहाँ पर विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भाषाओं के अपने साहित्य भी रहे हैं। ये साहित्य भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का चित्रण भी करते हैं। फिर भी आन्तरिक रूप से इनमें भावों एवं विचारों की दृष्टि से कुछ समानताएँ पाई जाती हैं। हिन्दी और कोंकणी में भी हम यही देख सकते हैं। हिन्दी समूचे भारत की भाषा है और कोंकणी गोवा, महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं केरल के कुछ प्रदेशों में बोली जानेवाली भाषा है। यह भारत के अल्पसंख्यक लोगों की भाषा रही है। इस भाषा का पुराना साहित्य अब प्राप्त नहीं है। जो कुछ भी प्राप्त है वह आधुनिक काल में ही लिखा हुआ है। कोंकणी का आधुनिक साहित्य मुख्य रूप से रोमन, देवनागरी और कन्नड़ लिपियों में लिखा मिलता है। यहाँ पर हम केवल देवनागरी में लिखी हुई कविता को ही विषय बनाते हैं क्योंकि यही कोंकणी के लिए प्रामाणिक रूप में स्वीकृत है। देवनागरी में लिखा गया कोंकणी का काव्य साहित्य बीसवीं शताब्दी में उत्तरार्द्ध से ही पाया जाता है। उसके पहले छिटपुट प्रयत्न तो चलते रहे लेकिन वे सफल नहीं हो सके। इसलिए जब हिन्दी के आधुनिक साहित्य के साथ कोंकणी का आधुनिक साहित्य प्रस्तुत किया जाए तो वह परिमाण की दृष्टि से बहुत कम है। फिर भी भावों एवं विचारों की दृष्टि से सम्पन्न रहा है। हिन्दी एवं कोंकणी की आधुनिक कविता को लें तो यही अनुभव होगा।

विषय की दृष्टि से हिन्दी एवं कोंकणी की आधुनिक कविता वैविध्य लिए हुए है। वह नवजागरण का चित्र प्रस्तुत करती है और देश भक्ति को अपने साथ लेकर चलती है। कहीं वह व्यक्ति के सुख-दुःख में समभागी रहती हैं तो कहीं उदात्त और उत्कृष्ट भावों को लेकर ऊंची उड़ानें भरती रहती हैं। कभी वह मूल्यों पर विचार करती है तो कभी अवमूल्यन की ओर भी संकेत करती है। आज के जीवन का यथार्थ चित्र अपनी खूबियों और कमियों के साथ हिन्दी तथा कोंकणी की कविता में उभर आया है जीवन की भिन्न-भिन्न समस्याओं का खुला चित्र सामने रखती हुई ये कविताएँ आने वाले भविष्य के लिए एक उज्ज्वल एवं आशापूर्ण मानसिकता के साथ आगे बढ़ रही हैं।

जागरण की कविताएँ

आधुनिक युग की पृष्ठभूमि राजनीतिक धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों से आंकी जाती है। इस युग की विविध एवं विलक्षण प्रवृत्तियों में प्रमुख है जागरण की प्रवृत्ति। यह राजनीति के क्षेत्र में जितनी दिखाई देती है उतनी ही सामाजिक या सांस्कृतिक क्षेत्र में भी। इसका प्रभाव आधुनिक युग के साहित्य में भी पाया जाता है। हिन्दी साहित्य ही नहीं भारत की समस्त भाषाओं के साहित्यों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है। आधुनिक हिन्दी तथा कोंकणी कविता के आधार पर हम इस राष्ट्रीय जागरण एवं मानवतावादी भावनाओं पर आधारित नवीन चेतना का परिचय देंगे। हिन्दी की राष्ट्रीय धारा मुख्य रूप में द्विवेदी युग में पाई जाती है। भारतेन्दु के समय भी राष्ट्रीय जागरण की प्रवृत्तियाँ हिन्दी की आधुनिक कविता में देखने को मिलती हैं फिर भी इनका समुचित विकास द्विवेदी युगीन काव्य में देखा जा सकता है। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी इन सब का नाम इस दृष्टि से लिया जा सकता है। देशभक्ति, वीरपूजा की भावना, अतीत चित्रण, मातृभूमि के प्रति ममता आदि इस समय की कविताओं के विषय रहे हैं। राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, जातिसेवा आदि के प्रति सामान्य लोगों को जागृत करने का कार्य इन कविताओं के माध्यम से हुआ है। हिन्दी और कोंकणी की आधुनिक कविता में यह प्रवृत्ति खूब पाई जाती

है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' इस प्रसंग में काफी महत्त्व रखती है। भारत की अतीतकालीन सम्पन्नता का चित्र जो इस ग्रंथ में खींचा है वह अन्यत्र नहीं मिल सकता। भारत का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं–

भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीलास्थल कहां
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहां
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है
उसका कि जो ऋषि भूमि है वह कौन भारतवर्ष है।[1]

'रुशिमुनींचो देश म्हजो पुण्य भारत तीर्थ'–रमेश भगवन्त वेळुस्कार ने कोंकणी में 'भारत तीर्थ' नामक कविता लिखी है जिसमें इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति मिलती है। वे भारत देश को पवित्र मानते हैं जहां वेदों की रचना हुई है, उपनिषदों का गायन हुआ है और जो ऋषियों का पुण्यस्थल रहा है।' भारत के अतिरिक्त कोंकण और गोवा की महत्ता का गान भी कोंकणी कविताओं में मिलता है। आनन्द वर्टी की 'म्हजें कोंकण' (मेरा कोंकण) शेणै गोयंबाब की 'म्हजें गोय' (मेरा देश गोवा) बाकीबाब बोरकर की 'जागी जाल्या गोंयची सासाय' (गोवा की पवित्रता जाग गई है) आदि कविताएँ इसी के उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त 'हिन्द देवते!' (बाकीबाब बोरकर), 'म्हान आमचो भारत' (आर. एस. भास्कर) आदि कविताएँ भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

मातृभूमि के गौरव गान के साथ साथ मातृभूमि पर मर मिटनेवाले वीर जवानों की महानता का वर्णन भी देश भक्ति से सम्बन्धित इन कविताओं में पाया जाता है। माखनलाल चतुर्वेदी की ''पुष्प की अभिलाषा' कविता प्रसिद्ध है जिसमें वे फूल की इच्छा को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में तुम देना फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाएँ वीर अनेक।[2]

रामनेश त्रिपाठी भी मातृभूमि के लिए हृदय में शक्ति भर कर चलने वाले युवकों की ओर अपने काव्य 'स्वप्न' में संकेत करते हैं। सोहनलाल द्विवेदी के काव्य में सत्याग्रही वीर नौजवानों के प्रयाण में प्रकृति भी साथ देती है। मातृभूमि का मान बढ़ाने के लिए, न्याय और नीति को सुरक्षित

करने के लिए, पुण्य के महत्त्व को दिखाने के लिए जीवनदायी जवानी रक्त का जो बलिदान हमारे वीर पुरुषों ने किया है वह किसी भी हालत में व्यर्थ नहीं होगा। कोंकणी के कवि रामचन्द्र नारायण नायक ने इस विषय को लेकर एक पूरी कविता ही लिखी है जिसका शीर्षक है 'व्यर्थ न्हय रे तें रक्त'' (वह खून व्यर्थ नहीं है)। कोंकणी के ही कवि मनोहर राय सरदेसाय अपनी कविता ''आमी मरचे नात'' (हम मरेंगे नहीं) में इस प्रकार इन भावों की अभिव्यक्ति करते हैं--

जीविताच्या खुर्साचेर	*जीवन के क्रूस पर हम*
मर्णाकूच मारतले	*मरण की कील ठोंकेंगे*
आमकां जरी गाडले भुंयेंन	*दफनाये जाएंगे अगर*
थडें फोडून येतले भायर।'	*तो पृथ्वी फोड़ निकलेंगे*

शहीदों के रक्त का मान और प्यारी जन्म भूमि का अखण्ड गौरव एकता के भाव के बिना असम्भव है। भारत जैसे महान देश में जहां पर हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, चाण्डाल, धनी, दरिद्र सब प्रकार के लोग वास करते हैं वहां पर सर्वधर्मसमन्वय, सर्वजातिसम्न्वय सर्वभावसमन्वय और सर्वस्थिति समन्वय की अत्याधिक आवश्यकता है। भारत की रक्षा भारतीयों की एकता से ही सम्भव है। हिन्दी और कोंकणी के प्रायः सभी राष्ट्रभक्त कवियों ने लोगों को उद्‌बोधित करने का प्रयत्न किया है। 'मातृ मन्दिर' नांमक कविता में मैथिलीशरण गुप्त की सशक्त पंक्तियाँ यहाँ उद्धरण के योग्य हैं।

जैन बौद्ध फारसी यहूदी मुसलमान सिक्ख ईसाई।
कोटि कंठ से मिलकर कह दें हम सब हैं भाई भाई।''[1]

इन पंक्तियों से करीब मिलती हुई पंक्तियाँ कोंकणी कवि आर. एस. भास्कर की कविता 'म्हान आमचो भारत' (हमारा भारत महान) में मिलती हैं।

भास म्हजी भास तुजी म्हणाय आमी धराचीं
गांव म्हजो गांव तुजो म्हणाय आमी दायजीं
स्वार्थ केन्ना खातीर हुमटावन उडोवया
अखण्डताय आमी सदा काळ रखूंया[8]

(मेरी भाषा, तेरी भाषा कह ले
हम धरती के
मेरा गांव, तेरा गांव कह ले
आपस में दायाद
स्वार्थ को कभी का
उखाड़ फेकें हम
अखण्डता को आपस में
सदा सर्वदा रखें हम)

कोंकणी के कवि आनन्द वर्टी ने अपनी कविता 'घड्याळ' (घड़ी) में लोगों को आह्वान किया है कि वे देश, भाषा और देशवासियों के खातिर अपना सब कुछ अर्पण करें। शरीर पंचभूतों का है, वह पंचभूतों में लीन हो जाएगा। परोपकार सदा बना रहेगा।

देश भास आनी लोको खातीर	*अपनी भाषा, अपनों के खातिर*
थोड़े तरीकर अर्पण रे	*थोड़ा भी तो अर्पण हो*
मेलो गेलो तर देह नुर्तलो	*मुए तो गए देह न रहे*
लोकां मनांत उरत लो रे[9]	*याद तुम्हारी रहे मन में*

अनादिकाल से भारत में नाना जाति के लोग अपने नाना भांति के संस्कारों को लेकर बसने आए हैं। इन भिन्न जातियों, संस्कारों धर्मों, रीतियों का जीवन्त समन्वय है भारतवर्ष। इसलिए इस देश में एकता बनाए रखने के लिए सर्वप्रथम जाति भेद को मिटाना होगा। हिन्दी एवं कोंकणी के कवियों ने इस बात पर जोर दिया है। गुप्त जी ने जातिभावना का विरोध करते हुए कहा है—

लिखी नहीं माथे पर जाति गुणकर्मों से उसकी ज्ञानि
सब के दो पद हैं दो हस्त सजातीय है मनुज समस्त॥[10]

कोंकणी में देखिए—

जाति फांति—देश विदेश विसरूया सगै भेद विभेद
ब्राह्मण गावडे खारे नायते सरया हाताक हात धरनु मुकार[11]

(जाति-पांति, देश विदेश भूलें सब हम भेद विभेद
ब्राह्मण, गौड, ईसाई मुसलमान आगे बढ़े घर हाथ में हाथ)

यह जाति-भेद मनुष्य का बनाया हुआ है। जाति के नाम पर मनुष्य

ने मनुष्य के श्रम का धोखेबाजी से लाभ उठाया है। निर्बल व्यक्तियों पर अपने बल के जरिये अत्याचार कर दिखाया है। यह ठीक नहीं है। सभी मनुष्य एक ही माला के कुसुमों के समान एक-दूसरे से मिले हुए हैं।[13] इनमें ऊंच नीच की भावना नहीं रहनी चाहिए। मनुष्यत्व का भाव विकसित होना है। इस मनुष्यत्व के प्रति हिन्दी एवं कोंकणी कवि लोगों को बराबर उद्बोधित करते रहे हैं। मनुष्य पर आक्रमण करनेवाले अमानुषिक भाव जैसे क्रोध, ईर्ष्या, असत्य, हिंसा आदि पर विजय प्राप्त करते हुए मनुष्यत्व की स्थापना इन कवियों का उद्देश्य रहा है। युद्ध से मंगल नहीं होता। मरने मारने में नहीं जीने जिलाने में ही सच्ची मनुष्यता है। इसे पाने के लिए त्याग एवं तपस्या की जरूरत है। परोपकार के भाव का विकास होना है।

'सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः वाली उक्ति का अनुकरण करते हुए गुप्त जी कहते हैं–

सब सुख भोगें रोग से रहित हों
सब शुभ पावें न हो दुःखी कहीं कोई भी।[13]

कोंकणी कवि आनन्द वर्टी इसनी भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

समृद्धि सम्पत्ति आसू अशीच	(समृद्धि सम्पत्ति रहे ऐसे
तुमचीय इच्छा म्हजे वरीच	तेरी इच्छा मेरी जैसे
सत् शिवाचो त्यार हात	सर पर सत् शिव–आशीर्वाद
शांति सोबतिकाय आंसू जगांत।[14]	शोभित रहे जग होकर शान्त)

इस भाव के विकास से हर कहीं शान्ति और सद्भावना का बोलबाला रहेगा और देश में सम्पत्ति एवं एश्वर्य कायम रहेंगे।

इस प्रकार हिन्दी और कोंकणी कविता में राष्ट्रीयता के भावों के साथ-साथ जागरण एवं उद्बोधन भी प्राप्त होता है। एक अखण्ड भारत का निर्माण, इन कवियों का उद्देश्य रहा है।

प्रेम, सौन्दर्य, कल्पना और प्रकृति-सम्बन्धी कविताएँ

हिन्दी के छायावाद युग के कवियों ने मुक्तकंठ से प्रेम की प्रशंसा की है। उन्होंने प्रेम की महत्ता को स्वीकार किया है। यही प्रेम मानव जीवन का

सर्वोत्तम भाव है। यही जीवन और जगत् का सर्वाधिक मूल्यवान तत्त्व है। संसार के समस्त क्रिया-व्यापार वस्तुतः प्रेम की महती प्रेरणा से सम्पन्न होते हैं। मनुष्य का जीवन प्रेम के बिना सुगन्ध रहित फूल के समान है। निराला ने प्रेम को 'उर उर के हीरों का हार' कहा है। पन्तजी के मत में यह 'सांस-सा सब के उर में वर्तमान' है। प्रेम के कवि प्रसाद का कथन सर्वोपरि प्रेम की महत्ता प्रस्तुत करता है–

प्रेम जगत् का चालक है इसके आकर्षण में खिंच के
मिट्टी का जलपिण्ड सभी दिन रात किया करते फेरा
इसकी गर्मी मरु धरणी गिरि सिंधु सभी निज अन्तर में
रखते हैं आनन्द सहित, है इसका अमित प्रभाव महा।[15]

प्रेम की यह महत्ता कोंकणी कवि ने इस प्रकार गायी है–

मोगा पसून सृष्टि जाता मोगु राकून घेता
जगांतु सर्वप्राणियांक मोगा नांव येता
आदिकाल धरनु मोगु करता सदा काम
हृदय है मोगाचें धाम अमर मोगा नाम।
(प्रेम से होती है सृष्टि प्रेम ही है उसका पालक
प्रेम ही इस जग में है सभी प्राणियों का चालक
आदिकाल से प्रेम अपना करता है बराबर काम
हृदय है प्रेम का धाम अमर है प्रेम का नाम।)

अभिव्यक्तियों में अन्तर के रहते हुए भी हिन्दी और कोंकणी पंक्तियों के मूल भाव समान रहे हैं। हिन्दी के छायावाद-युग में कवि प्रेम को समस्त जगत में व्याप्त मानते हैं। प्रेम में वे उस विराट का चित्र खींचते रहते हैं। प्रवृत्ति में भी उन्हें प्रेम ही प्रेम नजर आता है। प्रकृति के, सजी हुई दुलहन, नवोढ़ा आदि रूप इसी प्रेम चित्रण के परिणाम हैं। कोंकणी कवियों ने भी प्रकृति की कल्पना दुलहन के रूप में की है–

पावस आयलो	*पावस आया*
आनी सृष्टि जाली व्हकल	*और सृष्टि बनी दुलहन*
पाचवो न्हेसली शालू	*हरी पहन ली साडी उसने*
पोलको घालो पोपटी	*और हरी रेशमी चोली*
पचवोच भल्लो चूडो	*जूड़ा हरा सजाया उसने*

आनी पाचवी मळ्ळी फांती	*हरे फूल लगाये*
पावस आयलो	*पावस आया*
आनी सृष्टि जाली पाचवी	*और सृष्टि बनी दुलहन*
दोगांय रमलीं	*दोनों रमे*
दोगांय सोबलीं....[17]	*दोनों हुए शोभित*

विराट पुरुष और प्रकृति का मिलन। कितनी सुन्दर कल्पना है। हिन्दी के कवि अज्ञेय ने भी प्रकृति में नई वधू का रूप देखा है–

पीपल की सुखी डाल स्निग्ध हो चली
सिरीस ने रेशम से वेणी बाँध ली
नीम की भी बौर में मिठास देख
हँस उठी है कचनार की कली
टेसुओं की आरती सजा के
बन गई वधू वनस्थली।[18]

ऊपर दी गई कोंकणी कविता की पंक्तियों में कवि विराट पुरुष और प्रकृति का मिलन चित्रित करते हैं। इस सुन्दर मिलन के पश्चात् नवोढ़ा के मान और संकोच का वर्णन हम प्रसादजी की कविता में पाते हैं–

नेत्रनिमीलन करती मानो प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने
जलधि लहरियों की अंगड़ाई बार-बार जाती सोने
सिंधु सेज पर धरावधू अब तनिक संकुचित बैठी-सी
प्रलयनिशा की हल-चल स्मृति में मान किये सी ऐंठी सी।[19]

दोनों ही भाषाओं के इन कविता खण्डों में प्रकृति का मानवीकरण और मानव सहज शृंगार चित्र प्रस्तुत हुआ है। इसमें प्रकृति का उस विराट सत्ता से मिलन भी देखा जा सकता है। आत्मा-परमात्मा से मिलन के लिए तड़पती रहती है। अद्वैत भाव की इच्छुक वह उसे ध्यान से सुनती है, सृष्टि फेर फेर कर देखती है। उसकी दृष्टि में कोई नहीं आता, उसकी बोल कोई नहीं सुनता। इस प्रकार विरह में तड़पती हुई आत्मा का चित्र कोंकणी कवि विजयाबाय सरमळकार ने इस प्रकार दिया है–

दिसता कोण मारता उलो	*कोई मुझे पुकारता है*
दिवंक वेता उल्याक उलो	*सुनने को मैं तैयार खड़ी*
मोखतां पैस पैस नदर	*आडे आती मेरी नजर*

नदरे म्हज्या मेळना उतर[20] *नजर को न मिले कोई उत्तर*

यही व्याकुलता, यही चिन्ता, बिछुड़न, मिलने की तड़प महादेवी जी में भी पाई जाती है। वे कहती हैं—

गूंजता उर में न जाने दूर के संगीत सा क्या
आज खो निज को मुझे खोया मिला विपरीत सा क्या?[21]

प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत उषा और संध्या का चित्रण कवियों के लिए हमेशा प्रिय रहा है। प्रकृति के मानवीकरण के साथ-साथ हिन्दी और कोंकणी का संध्या-वर्णन देखिए।

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।[22]

निराला की सुन्दरी परी, संध्या, जो आसमान से नीचे की ओर उतर रही है तो कवि यहां पृथ्वी और आसमान को जोड़ने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन कोंकणी के कवि रमेश भगवंत वेळुस्कार ने संध्या को रानी मानकर लहरों पर उसकी नृत्य जैसी चाल का वर्णन इस प्रकार किया है—

तो मोग उचबंळ दर्या	*वह स्नेह उमड़ता दरिया*
आपनी दर्यांत विरपी सूर्या	*दरिया में शोभित सूरज*
तीं भंगरा किरणं चंवरां	*वे स्वर्ण किरण हैं चामर*
धवीं उदकार वेंचपी सांवरां	*जल पर है चुनती सेमल*
तसो खळ खळ या ल्हारांचो	*वह कलकल उन लहरों का*
माडा चुट्यानी मेजून घेंवचो	*गिन रखे पैर घुंघरू का*
फुडें कापसाच्या पावलांनी	*रूई के पावों को लेकर*
चलता अस्तमतेची राणी।[23]	*चल रही अस्तमय की रानी*

संध्या के समय दरिया में डूबनेवाले सूर्य का चित्र है। वेळुस्कार ने उसमें अस्तमयरूपी रानी की कल्पना की है। हिन्दी में निरालाजी का और कोंकणी में वेळुस्कारजी का यह चित्र बहुत ही सुन्दर रहा है। इन कवियों ने कहीं कहीं चाँदनी में नील कमल पर आसीन चन्द्रवदनी सुन्दरी की विशिष्ट मुद्रा देखी है तो कहीं रात को नीली परी समझकर चित्रित किया है। कहीं कवि दरिया के पानी में रूप निहारने वाले चन्द्रमा को देखता

है तो कहीं अपनी तराइयों में व्याप्त जलाशय में अपने महान आकार को देखनेवाले पर्वत को देखता है। सभी चित्र कवि की कल्पना के ही परिचायक हैं।

ऋतुओं के वर्णन में पावस कोंकणी कवियों के लिए बहुत प्यारा रहा है। प्रायः सभी कवियों ने किसी न किसी सन्दर्भ में पावस का वर्णन प्रस्तुत किया है। आनन्द वर्टी की निम्नलिखित पंक्तियां प्रकृति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करती हैं–

भिजलीं झाडां भिजली पानां	*भीगे पौधे भीगे किसलय*
तकतकीत सजली वनां	*चमकीली सज गई वनस्थली*
सळसळत व्हाळ आयलो व्हावन दोंगरा	*कलकल बहने लगा जल*
भल्लयो बांयो भल्ली तळीं	*प्रवाह ऊपर से बहता आया*
पाँचवेचार जळी मळी	*हरे हरे तृण झलमल झलमल*
नखशिख़ांत न्हावन	*नखशिखांत नहा आयी*
आयली ही वसुंधरा[24]	लो यह वसुंधरा

हिन्दी के छायावाद-युग के कवियों में भावों के मानवीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। कामायनी में श्रद्धा, आशा, लज्जा आदि भावों का मानवीकरण देखा जा सकता है। मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत में नींद का मानवीकरण करते हुए लिखा है–

"पलक पाँवडों पर पद रख तू
तनिक सलोना रस भी चख तू
आ दुनिया की ओर निरख तू
मैं न्योछावर हूँगी
आ जा मेरी निंदिया गूँगी।[25]

कोंकणी कवि आनन्द वर्टी ने अपनी दो कविताओं में नींद का मानवीकरण किया है। वे नींद को रानी मानकर बच्चे को सुलाने की जो योजना बनाते हैं वह अत्यन्त सुन्दर है–

सावरे कापसा आंग तिजें	*रेशम जैसी देह उसकी*
रंगान काळी सावंळी	*रंग काला साँवला*
रूप निवळ उदकावरी	*रूप निश्चल पानी जैसा*
नाजुक कंवळकळी	*नाजुक कमल कली-सी*

कुरकुर कुरकन्न कानात तुज्या	*कुरकुर करकन्न कान में तेरे*
सांगतली ती काणी।[26]	*कहती जाये वह कहानी*

'निळ्या दोळया परी' (नीली आँखोंवाली परी) में आनन्द वर्टी नींद का चित्र नीली आखोंवाली परी के रूप में खींचते हैं जो बच्चे को सुलाने के लिए पालने के गीत गाती है और उसे अपनी पांखों पर लेकर उड़ती हुई पारियों के देश तक ले जाती है। उसका रूप अत्यन्त सुन्दर और आचरण अत्यधिक आनन्ददायक एवं वात्सल्यपूर्ण है।[27]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी तथा कोंकणी के आधुनिक कवियों ने प्रेम सौन्दर्य का चित्रण अपने काव्यों में समान रूप से किया है। प्रकृति की सूक्ष्म दृष्टि से परख और उसका यथावत् चित्रण दोनों भाषाओं के कवियों को अभीष्ट रहा है।

बदलते परिवेश और हिन्दी तथा कोंकणी कविता

आज हम जिस युग में जी रहे हैं उसमें एक ओर देश का संकट रहा है, दूसरी ओर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटना चक्र में पिसती हुई मानव नियति भी रही है। वर्तमान जीवन में व्यक्ति व्यक्ति का मार्ग अन्धकार से भरा हुआ है। सब कहीं दुर्निवार गतिविधियां चल रही हैं जो धर्म को नष्ट करते हुए अधर्म को बढ़ावा दे रही हैं। आए दिन चलनेवाली क्रूर हत्यायें उनकी विपरीत परिणिति, लोकतान्त्रिक मूल्यों का ह्रास, रुपयों के प्रति अत्याग्रह, साम्प्रदायिक झगड़े, दंगों की प्रगति अलगाववाद और तज्जनित संत्रास व्यक्ति प्रति व्यक्ति को अंधकार की ओर धकेल रहा है। इस भीषण माहौल में व्यक्ति अपने को असुरक्षित पाता है और अपने को सुरक्षित रखने की तैयारियों में जुटा रहता है। कवि वेणुगोपाल की कविता में यह भाव सुन्दर रूप में अभिव्यक्त हुआ है–

"अब तक के सफर का हासिल तो यह है
कि जितने भी रास्ते थे.....सब का
जायजा किया और जान गया
कि सब एक ही जगह पहुँचते हैं
मतलब–समंदर तक
तो

आगे का सफर
समंदर में करना
है
इसलिए
सबसे पहले
यह कर रहा हूँ
कि
खुद को तैयार कर रहा हूँ
× × ×
सुना है कि समंदर में मगर और शार्क और पता नहीं
कौन-कौन जानवर रहते हैं
सो
बचाव की तैयारी जरूरी है
इसलिए
दाँतों को इस कदर मजबूत बना रहा हूँ
कि मौका पड़े तो मगर की पीठ में गड़ जाएँ
और पंजों को इस लायक
कि शार्क की गरदन पकड़ लें।[28]

आज की सामाजिक स्थिति का प्रतीकों के माध्यम से खींचा गया यह सशक्त चित्र अपने ढंग का अकेला है। जीवन का हर क्षेत्र आजकल इस महासागर की भांति भयंकर बना हुआ है जिसमें तैरना तो कठिन है, बल्कि एक बार डुबकी लगाकर ऊपर उठना भी असम्भव हो गया है।

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजन के बारे में बताते हुए कहा है कि काव्य यश का साधन है, अर्थ प्राप्ति का साधन है और सबसे बढ़कर सदुपदेश देने का साधन है। "कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे" कहकर उन्होंने काव्य के जिस उदात्त प्रयोजन की ओर संकेत किया है वह आज के बदलते सामाजिक परिवेश में क्या से क्या हो गया है इसका वर्णन यदि कवि धूमिल ही करें तो बड़ा ही युक्ति संगत जान पड़ेगा–

इस वक्त कान नहीं सुनते हैं कविताएँ
कविता पेट से सुनी जा रही है

आदमी ग़ज़ल नहीं गा रहा है ग़ज़ल
आदमी को गा रही है।[29]

आज के समाज में हर चीज़ अपना सहज स्थान नहीं पा रही है, हर व्यक्ति अपना सहज मान नहीं पा रहा है। सब कुछ उलटा पुलटा है। राजनैतिक, आर्थिक और न जाने किन किन क्षेत्रों में यह अराजकता फैली हुई है। स्थिति इतनी गम्भीर हो गई है कि धूमिल के ही शब्दों में "वापस लौटकर छूटे हुए जूतों में पैर डालने का यह वक्त नहीं है।" स्वतन्त्रता अब नष्ट हो चुकी है। वह "सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है जिन्हें एक पहिया ढोता है।" जनतंत्र "सिर कटे मुर्गे की तरह फड़कता रहा है"। मनुष्य का चरित्र अब "लन्दन और न्यूयार्क के घुंडीदार तश्मों से डमरू की तरह बजता हुआ अंग्रेजी का 8 बन गया है।" जनतंत्र सच्चे अर्थों में वह ध्वनि मात्र रह गया है जो सैनिकों के जूतों से निकल रही हो।

कर्फ्यू में शान्त ठण्डी सड़क पर
सैनिक दस्तों के जूतों से
कितनी सफेद और मार्मिक ध्वनि
निकल रही है....जनतंत्र....जनतंत्र....जनतंत्र[30]

हमारे टूटे हुए जनतंत्र और पथ भ्रष्ट स्वतन्त्रता की ओर कोंकणी के कवि बाकीबाब बोरकर ने भी संकेत अवश्य किया है। लेकिन उनके शब्दों में उतनी शक्ति नहीं जितनी धूमिल के शब्दों में है।

देखिए–

गणाक, क्षय, बुद्धीक भय, फल्यांक जय, कालचीच वंय
आयलां थंय स्वतन्त्र्य न्हय, स्वतन्त्र्य न्हय स्वतन्त्र्य न्हय।[31]

(जन को क्षय, मति को भय, कल को जय, कल को रोक
आया जो स्वतन्त्र्य यहाँ, वह स्वतन्त्र्य नहीं, स्वातन्त्र्य नहीं)

नए समाज में व्यक्ति का कुछ भी मूल्य नहीं है। वह कहीं का नहीं रह गया। कोंकणी कवि मनोहर राय सरदेशाय अपनी कविता 'मदले आमी' (मस्त हम) में कहते हैं–

कालच्यो राती फायचे दीस	*कल की रातें कल के दिन*
हाँचे मदीं–मदले आमी	*इनके बीच मस्त हम*

न्हय भाटकार न्हय मुंडकार — *न रहे राजा न रहे सामंत*
न्हय घरकार न्हय शेतकार — *न रहे गृहस्थ न रहे किसान*
न्हय वासरेंत न्हय रस्त्यार — *न रसोई में न रास्ते पर*
न्हय शागार्द न्हय स्वामी। — *न रहे शागीर्द न रहे स्वामी*[32]

आज का मानव रेस के घोड़े के समान है जो दौड़ता है, दौड़ता है और दौड़ता ही रहता है। साथ दौड़नेवाला पाँव अटकाकर दूसरे को गिराने का प्रयत्न करता है। किसी के मन में दया का बीज तक नहीं है। आँखों के आँसू भी अपने आप सूख जाते हैं। किसी से किसी का नाता नहीं। इस दौड़ में व्यक्ति सब कुछ भूल जाता है। उसे आगे पहुँचने की धुन लगी रहती है। नाते रिश्ते किसी काम के नहीं रहते। माता माता नहीं रहती, पुत्र पुत्र नहीं रहता। देखिए–

"हर आदमी सिर्फ अपना धंधा देखता है
सबने भाईचारा भुला दिया है
आत्मा की सरलता को मारकर
मतलब के अंधेरे में
सुला दिया है[33]
×× ×
मैं तेरा बेटा हूँ। तू मेरी माँ है
मगर सुन। हम दोनों के बीच का रिश्ता कहाँ है
पता नहीं कब गिर गया वह
तेरे आँचल, मेरे फटे हुए जेब से।[34]

आज के समाज में कोई किसी का नहीं है। सहानुभूति और प्यार एक छलावा है जो एक-दूसरे की पीठ में छुरी भोंकने के काम आता है मानव स्वार्थ का पुतला बन गया है। धन संपादन ही उसका लक्ष्य रहा गया ह। मैत्री भाव का अभाव है। परोपकार भुलाया जा चुका है मानव की रग रग में अब खून नहीं पेट्रोल दौड़ रहा है। वह इन्सान की चमड़ी मढ़ी मशीन है जिसमें बुलेट ही बुलेट भरे हैं। उसका चलना गोलियों का चलना है।[35] आदमी आज केवल एक जोड़ी जूता रह गया है जो मरम्मत के लिए तैयार खड़ा है।[36] आज के मानव के छल कपट की ओर संकेत करते हुए कोंकणी कवि आनन्द वर्टी कहते हैं–

खरी खोटी नाती हंगा	*खरा खोटा नाता यहाँ*
खरे खोटे मुखार भाव	*खरे खोटे मुख पर भाव*
''थंक्यू''तोडांत धोळयल्यार	*''थेंक्यू'' मुँह पर लावे तो*
चोर लेगीत दिसत साव	*चोर भी लगता साधु संत*
हांसत हांसत उलैतनां	*हँसते-हँसते बातें करते*
हातात येता दूसरो हात	*हाथ में आता दूजा हाथ*
फाट जरा फिरचे भितर	*पीठ जरा फेरी तो फौरन*
कुल्याचेर बसत लात[37]	*चूतड पर पड़ती है लात)*

'स्कायस्क्रेपर्स' कविता में वर्टीजी ने मुनुष्यता के नाश और मानव की मदान्धता का जिक्र किया है। मानव आज मनुष्यत्व को भूलकर दूसरों को हड़पना अपना धर्म मानता है। स्वार्थ में वह पूर्णतः अंधा बन गया है–

हें घर म्हजें ही म्हजी भूंय	यह मेरा घर यह मेरी भूमि
हे म्हजें उदाक हे म्हजें राष्ट्र	यह मेरा पानी यह मेरा राष्ट्र
ही म्हजी हद्दती दुसन्याची	यह मेरी सीमा वह दूसरे की
मागीर कुड्डो हांव धृतराष्ट्र[38]	और मैं हूँ अंध धृतराष्ट्र

मदान्धता उसे यहाँ तक पहुँचाती है कि उसकी आत्मीयता पूर्णतः नष्ट होती है। आत्मीयता आज जले हुए कागज की तसवीर बन गई है। चरित्रहीनता मंत्रियों की कुर्सियों में तबदील हो चुकी है। आदमी बचाव के लिए खुद के खिलाफ हो गया है। वह हत्यारा बन गया है। लेकिन सामने आकर वह हत्या नहीं करता। अनकिए अपराधों के लिए वह एक दूसरे को जिम्मेदार बनाता रहता है।[39] ''मामूली तौर पर क्रूरता भी आज जिन्दा रहने के लिए एक जरूरत बन गई है। आदमी आदमी को मारकर 'उसकी कटी हुई जंघाएं, धुली हुई अंतडियाँ, उसी व्यापारिक श्रद्धा से लटका देता है जिस श्रद्धा से माली फूलों के गजरे लटकाता है।[40] कोंकणी के कवि आर. एस. भास्कर ने मानव की इस क्रूरता को इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है–

मनशाखातीर सगळयांकयि पीडा जाता
मनीश मनशाकच मारता
जिवोच कातरता

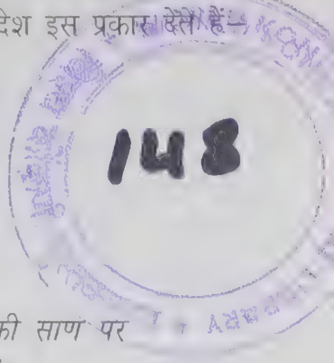
जिवोच लसता
जिवोच चाबता
जीव असतनाच पुरता
कागज जसीच पिंजूनु उडेयता।[41]

(मनुष्य के कारण सबको दुःख है
मनुष्य मनुष्य को मारता है
जिन्दा ही उसे काटता है
जिन्दा ही उसे जलाता है
जिन्दा ही उसे चबाता है
जिन्दा ही उसे दफनाता है
कागज़ के जैसे फाड डालता है)

इस प्रकार मानव आज मानव से ही डरता है। वह निस्संग हो गया है। वह अतीत और भविष्य के दो पाटों के बीच टूटते फूटते पिसते हुए भी नहीं सोच पा रहा है। कवि वेणुगोपाल ने 'ब्लेक मेलर' में मानव की इस असहाय अवस्था का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है।[42] आज के दोहरे समाज का चित्र कोंकणी के कवि लक्ष्मणराव सरदेशाय ने अपनी 'दोन जागां' (दो स्थान) में विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है।[43] समाज में एक ओर अच्छे विचार हैं, नीति और सत्य का बोलबाला है तो दूसरी ओर सत्ता, सम्पत्ति और दिखावा चल रहा है। एक ओर धर्म चलता है तो दूसरी ओर धर्म की ढोंग।

आज का कवि अमानवीयता से लड़ता हुआ अपरिचित बवंडर के बावजूद मानवीय होने का उचित मौसम पेश करना चाहता है। उसके लिए वह पेड़ के जड़ों के सत्संग से लौटकर मौसम के वातावरण में फैलना चाहता है। सूर्योदय उसे अपना ही उदय लगता है। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में फैली हुई अराजकता को दूर करके मानव की पुनः प्रतिष्ठा के लिए, उसमें मानवीय भावों को जगाने के लिए कवि वातावरण को साथ लेकर यथार्थ चित्रण करता हुआ आगे बढ़ता है। सामाजिक क्षेत्र में चलनेवाले अधार्मिक कार्यों का चित्र गहरी संवेदना के साथ प्रतीकों के सहारे कवि अंकित करता है और यह संदेश देता है कि आज के डूबनेवाले समाज को नारे की नहीं किनारे की जरूरत है। अपने समय के कर्कश

वार्तालाप के साथ वह मंगलमय भविष्य की भी इच्छा प्रस्तुत करता है। कोंकणी कवि मनोहरराय सरदेशाय भविष्य का संदेश इस प्रकार देते हैं–



फायच्या आमच्या संवसारांत
अमकां खूब खूब करचें आसा
जिणे फतरीक काळीज धांसून
बीज जगाक दिवची आसा,

(आने वाले संसार में
बहुत कुछ करना बाकी है
घिसना है हड्डियों को जीवन की साण पर
बीज नया संसार को देना है)[44]

कवि मानवीय गरिमा के साथ उन्मुक्त जीवन का भी पक्ष लेता है तथा हठवादी दुर्भावनापूर्ण पाखण्ड को दूर करने का प्रयास करता है। आज का हिन्दी तथा कोंकणी कवि जाति-पांति, उच्च-नीच, स्त्री-पुरुष, धनी-दरिद्र आदि के अमंगल भेदाभेदों के विरुद्ध आवाज़ उठाता हुआ मानव की एकता की स्थापना करना चाहता है। पेशे को जाति मानने की जो गलतफहमी आज के समाज में मौजूद है, भाषा के नाम पर और जाति के नाम पर प्रतिदिन जो झगड़े होते रहते हैं, इन सबको दूर करने के लिए कवि इन सामाजिक कुरीतियों का भंडाफोड़ करता है। हिन्दी के कवि लीलाधर जगूडी इस सन्दर्भ में निर्माणपरक दायित्व के साथ कहते हैं–

यह पृथ्वी उसी की है जो इसे खोदते हैं
टूटने से बचाते हैं
इसके बिगड़ैलपन को संवारते हैं[45]

यही आज की इस समस्या का अन्तिम समाधान है।

आज की हिन्दी और कोंकणी कविताएं–विषय वैविध्य

आज की कविता में वैविध्यमय जीवन का यथार्थ अंकन देखा जा सकता है। आसपास की जिन्दगी को खुली आँखों से देखने की सामर्थ्य इन कवियों में है। इसलिए मानवीय रिश्तों के साथ साथ जीवन के विविध आयामों का उद्घाटन बौद्धिक धरातल पर किया गया है। लघुमानव की प्रतिष्ठा के साथ-साथ मानवीय गरिमा का रूपायन भी इसमें देखा जा

सकता है। संसार में ऐसी कोई भी चीज नहीं जो इस कविता का विषय न बन चुकी हो। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त जीवजन्तु, शहर, रेल, स्कायस्क्रेपर्स, माइक्रोस्कोप, टी. वी., हॉस्पिटल, पोल्यूशन, रेस, इस प्रकार न जाने कौन-कौन-सी चीजें कविता के विषय बन चुकी हैं। सांप के जैसे विषैले जन्तु आज आसानी से कविता के विषय बनते हैं क्योंकि आज के विषैले वातावरण का सही चित्र सांप को छोड़कर और किससे उपमित किया जा सकता है? प्रतीकों की आड लेकर मानव जीवन के कटु सत्यों का चित्रण आज के कवियों के लिए अभीष्ट रहा है। जैसे हिन्दी के कवि हैं, वैसे कोंकणी कवियों में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। अज्ञेय की 'सांप' कविता तो प्रसिद्ध है। कोंकणी में आनन्द वर्टी ने 'सोरोप' (सांप) कविता लिखी है। दोनों कविताओं का मूल एक ही है। अज्ञेय की कविता अत्यन्त छोटी बल्कि तीखी और व्यंग्यात्मक है। देखिए–

सॉंप
तुम सभ्य तो नहीं हुए
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आता
एक बात पूछूँ–(उत्तर दोगे)
तब कैसे सीखा डसना–विष कहाँ पाया?[46]

शहर में रहनेवाले लोगों में फैले हुए विष एवं एक दूसरे को काटने की प्रवृत्ति इससे ज्यादा सुन्दरता के साथ और कैसे चित्रित की जा सकती है। कोंकणी कवि आनन्दवर्टी की अभिव्यक्ति इतनी सुन्दर नहीं हैं लेकिन वे भी आदमी में छिपे हुए सर्प का जिक्र अवश्य करते हैं। उनका कहना है आदमी में जो सर्प छिपा हुआ है उसे मत जगाइए। वह जाग जाए तो संसार में प्रलय मच जाएगा। आदमी और सर्प की समानता करते हुए वर्टी जी कहते हैं–

उन्मत्त स्वरांत म्हज्या फुत्काराचो शेष आनी
म्हज्या हाता मिठी भितर यमपाशा घट्टपणा
म्हज्या उतर चाली भितर वक्रताय, सूडमनान
सर्पदेही हांव जाणा[47]

(उन्मत्त स्वरों में मेरे रहता शेष

मेरी मुट्ठी में है बल यमराज के पाश का
शब्द, चाल में रही वक्रता बदले का विष
मैं हूं सर्प देह वाला आदमी)

हिन्दी के कवि मंगलेश डबराल और कोंकणी के कवि प्रकाश पडगाँवकार ने रेल को प्रतीक बनाकर मानव के जीवन मरण की कहानी प्रस्तुत की है। पडगाँवकार ने रेल के बहाने मानव जीवन के चलतेपन के चित्र खींचने का प्रयास किया है। डबराल की कल्पना में रेल जैसे ही प्लाटफार्म को छोड़कर आगे बढ़ती है तो प्लाटफार्म सुनसान रह जाती है, उदास, अकेली, सिहरती हुई। पडगाँवकार की कविता में रेल का चलना, सीटी बजाना, सिग्नल पाना, स्टेशन पर रुकना, लोगों को इकट्ठा करना, फिर चली जाना सब जीवन के ही प्रतीक रह गए हैं। मंगलेश डबराल रेल के प्रतीक से मृत्यु की ओर संकेत करते हैं तो पडगाँवकार जीवन की ओर। उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। पडगाँवकार का कहना है–

चलता मुखार रेलवे यंत्र	*(आगे चलना रेलवे यंत्र*
वोडीत डब्यांची	*खींच रहा डिब्बे रूपी*
पोरां बाळां[48]	*बाल-बच्चों को)*

पडगांवकार ने इस कविता में दर्शन का भी काफी सहारा लिया है। मानव जीवन की क्षणिकता की ओर वे संकेत करते हैं। पुनरपि जननम्, पुनरपि मरणम्, वाला सत्य भी इस कविता के जरिए प्रकट करने का प्रयास वे करते हैं। मंगलेश डबराल यद्यपि 'मौत एक रेल की तरह है" कहते हैं फिर भी पडगाँवकार के समान दार्शनिक उद्‌गार भी प्रकट करते हैं। उनका कहना है–

कितनी सारी नदियाँ! जिन्हें मैं नहीं जानता
कितना सारा पानी है! जिसे मैं ने नहीं छुआ
अब यह सब पड़ता है मेरे रास्ते में,[49]

जन्मान्तर से गुजरती हुई मानव आत्मा नये नये अनुभवों से होकर आगे बढ़ती है। यह भेदाभेदरहित है। प्रकाश पडगाँवकार कहते हैं–

रेलवेन पाद्री, शिख गुरुचे	*(रेल में पाद्री, सिखों के गुरु*
आयकतां मुल्ला, स्वामीचे विचार	*सुनते मुल्ला, साधु विचार*
रेलवे जशी स्टेशनार थारता	*स्टेशन पर रुकती है रेल*

तशे थारतात हे एकाच तत्वार	*तत्त्व एक पर स्थिर ये लोग)*

मनुष्य की मूलभूत एकता की अभिव्यक्ति यहाँ पर देखी जा सकती है। शहर का चित्र आज के हिन्दी तथा कोंकणी दोनों कवियों के लिए अत्याधिक प्रियंकर रहा है। आज का सही जीवन अंकित करने के लिए, उसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने के लिए शहर का चित्रण अत्यन्त आवश्यक है। शहर के चित्रण से ये कवि मानव जीवन में पाई जानेवाली वासनाओं से जागृत कुप्रवृत्तियों और उनके शिकार बने हुए सामान्य लोगों का चित्र सामने उपस्थित करते हैं। हिन्दी और कोंकणी कवि शहर को लगभग एक ही नजर से देखते हैं। शहर आजकल मानव को अपनी मनमानी शक्ल में ढाल रहा है। शहर के जीवन में कोई असलियत नहीं रहती। यहाँ का नकली जीवन व्यक्ति को अंधेरे में धकेल देता है, उसकी आत्मा को नष्ट कर देता है जहाँ पर खतरे की घंटियाँ देखकर व्यक्ति उस पर मोहित हो जाता है तो शहर अपना असली राक्षसीपन लेकर सामने आता है; व्यक्ति को बिल्कुल नष्ट करते हुए। देखिए–

केन्ना केन्नाय रुसलो तुजेर	*जब तब तू रिसाता रहा*
पिरंजळून शाप दिले	*तिलमिलाकर शाप दिया*
तुजी नाक हां आंगात जेन्ना	*तेरी नाखून देह में घुसकर*
घूसून रगत भायर आयलें	*मेरा खून बहता रहा*
तुज्या श्वासाभितर जेन्ना	*तेरे श्वास में श्वास मिला कर*
जीव म्हजो घुसमटलो	*मेरा दम घुटने लगा*[50]
तुज्या हिंस्र नदरेन म्हका	*तेरी हिंस्र दृष्टि ने मेरे*
जेन्ना आंगार चिमटो काडलो[51]	*अंग-अंग फिर चिहुँट लिए*

मंगलेश डबराल इसी भाव को और एक तरह से व्यक्त करते हैं–

एक भीड़ में शहर लाठियों की तरह हम पर टूट रहा है
एक जासूस की तरह हर दम
हमारी हरकतों से गुजर रहा है
फफूँद की तरह फैल रहा है शहर हम पर[52]

शहर का और एक रूप भी है जहाँ पर प्रेम करती हुई स्त्री ठगी जाती है। गोद में बच्चे को लेकर वह सड़क पर निकल पड़ती है और बड़े शहर में खो जाती है। शहर जहां पर बड़े बड़े होटलों में पार्टियाँ, नाच

गान और न जाने क्या-क्या चल रहा है इसका यथार्थ चित्र कोंकणी कवि आनन्द वर्टी ने ''सांजे वेळचे सात'' (संध्या के सात बजे) नामक कविता में खींचा है। धूमिल जी ने शाम के सूर्यास्त के वर्णन के बहाने शहर के इस घिनौने चित्र को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

शाम हो रही है
दिन के मुंडेर पर अंधकार में आधा झुका सूरज
अपनी जांघों पर / रोशनी की गुलेल तोड़ रहा है
रंगों की बदचलन इच्छाएं शहर का सबसे अच्छा
'शोकेस' तैयार कर रही हैं।[53]

आधुनिक हिन्दी और कोंकणी कविता–शिल्प

शिल्प की दृष्टि से आज की कविता पूर्ववर्ती काव्यों की अपेक्षा अधिक समृद्ध रही है। यह हिन्दी और कोंकणी दोनों भाषाओं की कविताओं के प्रसंग में ठीक है। इस युग के कवियों ने कथन का एक विशेष ढंग अपनाया है जिसे बहुत कुछ अंशों में प्रतीकात्मक शैली की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। ये प्रतीक वैविध्य लिए हुए हैं। कहीं पौराणिक प्रतीकों के आधार पर विषय की व्याख्या का प्रयत्न किया गया है तो कहीं दिन प्रतिदिन के जीवन से ये प्रतीक लिए गए हैं। कहीं पर प्राकृतिक बिम्बों की योजना है तो कहीं दार्शनिक बिम्ब मिलते हैं। मुक्तिबोध ने 'मनु' शब्द का प्रयोग 'सृष्टि के प्रथम पुरुष के' प्रतीक के रूप में किया है।

इसलिए प्रत्येक मनु के पुत्र पर
विश्वास करना चाहता हूँ।[54]

पौराणिक घटनाओं को आधुनिक सन्दर्भ के साथ गूँथते हुए कई जगहों पर चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। कवि नीचे महाभारत की प्रसिद्ध घटना को वर्तमान जीवन के संघर्षों के साथ समन्वित करते हैं–

मैं नवागत वह अजित अभिमन्यु हूँ
प्रारब्ध जिसका गर्भ ही से हो चुका निश्चित
अपरिचित जिन्दगी के व्यूह में फेंका हुआ उन्माद
बांधी पंक्तियों को तोड़
क्रमशः लक्ष्य तक बढ़ता हुआ जयनाद[55]

कोंकणी के कवियों ने भी इसी प्रकार चित्रणों के लिए अभिमन्यु, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र आदि का उल्लेख किया है।

पदमव्यूहांतु धुपसल्ले तु अभिमन्यू सारकोच
आज जाला म्हजो। जो अभिमान[56]
हे घर म्हजें ही म्हजी भूंय। ही म्हजी हद्दती दुसन्याची
हे म्हजे उदाक हे म्हजे राष्ट्र। मागीर कुडो हांव धृतराष्ट्र[57]

पहले उदाहरण में अभिमन्यु का चित्र आज के मनुष्य के अभिमान की स्थिति को व्यक्त करने के लिए दिया गया है और दूसरा उदाहरण आज के मानव के स्वार्थ को धृतराष्ट्र की अंधता में चित्रित करता है। प्रकाश पडगाँवकर अश्वत्थामा में आधुनिक पीडित संत्रस्त और अस्वस्थ मनुष्य को पाते हैं। उनकी कविता 'हांव मनीस अश्वत्थामो' इसी का प्रमाण है। यदुकुल के विनाश की ओर संकेत करते हुए उसके जरिए आज के मानव की अमानवीय प्रवृत्तियों के बुरे परिणामों का चित्रण आर. एस. भास्कर इस प्रकार करते हैं–

हो पिठो	*यह चूर्ण*
समिद्रांत बुड्की मारतलो	*सागर में बह जाएगा*
समिद्रादेगेर अचानक	*तट पर अचानक*
तोण जावन किल्लेतलो	*तृण बन कर उग आयगा*
तुटेयता तुटेयता रूपांतर घेतलो	*उखाड़ते हुए ले लेगा*
लोखंडा-कांडण जातलो	*रूपा लौह-मूसलों का*
आनी	*और*
होच आसतलो यमकाळ	*बन जाएगा यमकाल*
मनीसवंशाच्या विनाशक	*मानव के विनाश का)*[58]

आज की कविता का अलंकार-विधान भी बिल्कुल नया है। इस कविता में उपमान भी दिन-प्रतिदिन के जीवन से चुने जाते हैं। इन कवियों के द्वारा गृहीत उपमानों में 'अंधी गुफा का द्वार', 'अंध कूप का सैरन, जूते से निकाला गया पांव, टेलिफोन के खम्भे पर फंसी पतंग की खडखड़ाहट, महरी, सूखा घोंसला, चारपाइयों की रस्सियाँ, अंगोछा, वारंट, अकाल, आदि आते हैं। यहाँ भी कवि वातावरण को साथ लेकर आगे बढ़ता है। कवि को सूरज और जेब घड़ी में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता।

एक दो उदाहरण लीजिए–

(1) काले तहके सफेद खडिया से
मैं तुम्हारे लिए लिखता हूँ–'अ'
और तुम्हारा मुख किसी अंधी गुफा के द्वार की तरह
खुल जाता है–'आ'––ऽऽ'[59]

(2) तुम्हारी मातृभाषा
उस महरी की तरह है जो
महाजन के साथ रात भर
सोने के लिए
एक साड़ी पर राज़ी है[60]

(3) चारपाइयों की रस्सियों जैसा मोटा पानी बरसता है।

(4) एक किलोमीटर हरियाली अंगोछे की तरह खिसक गई।[61]
कभी कभी ये उपमान बड़ा ही भयानक रूप भी ले लेते हैं

(1) जैसे छेनी सडसी में ऐसे तनी है
जैसे गुदार मांस में घूँसा हुआ दाँत।[62]

(2) उसकी कविताओं में।
बवासीर की गांठ की तरह शब्द लहू उगलते हैं।[63]

कोंकणी कवि आर. एस. भास्कर ने भी इस प्रकार के उपमानों का प्रयोग किया है। अस्तमय सूर्य का वर्णन अत्यन्त भयानक लग रहा है–

अस्तंतेचें सूर्यबिंब	अस्तमय का सूर्य
आज तुका रक्ताघ ळूळो	थक्केदार खून का गोला है
सागेर निष्ठूर दैत्या सारको	सागर निष्ठर दैत्य-समान
निस्तवंपि रगत चिवूंन घेता	टपकता खून चूस लेता है।
नाचपी ल्हारांक फाटीर लागल्या	नाचते शहरों पर घाट घाट
घाट घाट रक्तशाय[64]	पड़े हैं खून के निशान

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी और कोंकणी काव्य में आधुनिक युग में समान काव्य प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती है। कहीं कहीं अभिव्यक्ति की भिन्नताओं के रहते हुए भी इन कवियों के द्वारा समान शिल्प का प्रयोग हुआ है।

सन्दर्भ-सूची

1. भारत भारती मैथिलीशरण गुप्त अतीत खण्ड, पृ. 10
2. क्रांति संगीत–पृ. 39
3. आधुनिक कवि–पृ. 1
4. जय गांधी, सोहनलाल द्विवेदी पृ. 94
5. स्वतन्त्र गोयांतली कोंकणी कविता, पृ. 1
6. क्रांति संगीत–पृ. 11
7. मंगल घट
8. नक्षत्रां पृ. 14
9. अक्षय दीवो, पृ. 4
10. भारत भारती, पृ. 104
11. कविता–83, 84, 85, पृ. 43
12. अक्षयदीवो, पृ. 133
13. युद्ध पृ. 53
14. अक्षयदीवो, पृ. 23
15. प्रसाद ग्रंथावली–2, प्रेमपथिक पृ. 66
16. कविता, 83, 84, 85, पृ. 17
17. स्वतन्त्र गोयांतली कोंकणी कविता पृ. 64
18. बावरा अहेरी, पृ. 10
19. कामायनी, 'आशा सर्ग' पृ. 33, 34
20. विसरूं कशें विसरूं कशें–विजया सरमळकार–कोंकेणी समीक्षण आनी तत्त्व पृ. 12
21. सन्धिनी पृ, 78
22. अपरा, पृ. 22
23. स्वतन्त्र गोयांतली कोंकणी कविता पृ. 76
24. अक्षय दीवो पृ. सं. 108
25. सांकेत पृ. सं. 284
26. अक्षयदीवो, पृ. [illegible]
27. वही, पृ. 21
28. चट्टानों के जलगीत, पृ. सं. 22
29. संसद के सड़क तक, पृ. 66
30. सुदामा पांडे का प्रजातन्त्र, पृ. 36
31. स्वतन्त्र गोयांतली कोंकणी कविता पृ. 8
32. स्वतन्त्र गोयांतली कोंकणी कविता पृ. 32
33. संसद के सड़क तक, पृ. 119
34. वही
35. खूँटियों पर टँगे लोग, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
36. संसद के सड़क तक, पृ. 41

37. अक्षयदीवो, पृ. 75
38. अक्षयदीवो, पृ. 29
39. सुदामा पांडे का प्रजातन्त्र, पृ. 70
40. वही, पृ. 50
41. नक्षत्रां पृ. 19, 20
42. चट्टानों के जलगीत पृ. 95
43. स्वतन्त्र गोयांतली कोंकणी कविता पृ. 5
44. स्वतन्त्र गोयांतली कोंकणी कविता पृ. 115
45. रात अब भी मौजूद है
46. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ. 29
47. अक्षयदीवो, पृ. 25
48. काळ रेल्वेच्यो, पृ. 7
49. रेल में सात कविताएँ—पहाड़ पर लालटेन, पृ. 52
50. काळ रेल्वेच्यो पृ. 22
51. अक्षयदीवो, पृ. 106
52. पहाड़ पर लालटेन पृ. 48
53. संसद से सड़क तक
54. तार सत्तक, पृ. 49
55. चक्रव्यूह—कुंवर नारायण
56. नक्षत्रां पृ. 37
57. अक्षयदीवो, पृ. 29
58. नक्षत्रां पृ. 28
59. संसद के सड़क तक, पृ. 49
60. वही, पृ. 18
61. नये कवि—एक अध्ययन भाग. 6. पृ. 32
62. सुदामा पांडे का प्रजातन्त्र, पृ. 74
63. संसद के सड़क तक, पृ. 39
64. नक्षत्रां पृ. 25

हिन्दी और कोंकणी कहावतें--एक तुलनात्मक झाँकी

कहावतें समाज की धरोहर हैं। वे जनता जनार्दन की उक्ति हैं। प्राचीन काल से ही विकसित अविकसित सभी भाषाओं में कहावतों का प्रयोग होता रहा है। सभी भारतीय भाषाओं की मूल समझी जानेवाली संस्कृत भाषा में अनेक कहावतें मिलती हैं जिन्हें सुभाषित नाम से अलंकृत किया गया है। कहीं-कहीं इन कहावतों ने अन्योक्ति अलंकार का रूप भी ग्रहण किया है। यों तो कहावतें अपने असंस्कृत रूप में ही भाषा की अलंकरण मानी जाती हैं। साधारण बोलचाल में किसी तथ्य को प्रमाणित करने के उद्देश्य से बीच-बीच में कहावतों का प्रयोग होता है जिन्हें जनता जनार्दन से अलग करना असम्भव है। सभ्य असभ्य सभी प्रकार के लोग अपनी-अपनी भाषा में कहावतों का प्रयोग करते रहते हैं। संसार में शायद ऐसी कोई भाषा या समाज नहीं होगा जिसमें कहावतों के लिए स्थान न हो। इसका अलग कारण भी है। कहावतों में मानव जीवन का सत्य छिपा रहता है और यह कथ्य की प्रामाणिकता को स्वयं सिद्ध कर जाता है। कहावतों का कलेवर छोटा होने के कारण गागर में सागर भरने की विशेष प्रवृत्ति इनमें दिखाई पड़ती है। व्यापक समस्याएँ, गम्भीर प्रश्न और जटिल विषय नुकीले वाक्यों में कहावतों में प्रकट हो जाते हैं। जिस समाज में ये कहावतें प्रचलित हें उस समाज की रुचि, अरुचि, सभ्यता, संस्कृति आदि को ये निरावरण कर जाते हैं। इनके पीछे विशेष अनुभव या घटना-व्यापार काम करते रहते हैं।

हिन्दी और कोंकणी एक ही परिवार की भाषाएँ होने के कारण इनमें कई शब्दगत और अर्थगत समानताएँ पाई जाती हैं। लेकिन इन भाषाओं को बोलनेवाले समाज एक-दूसरे से बहुत ही दूर रहे हैं। यह केवल स्थानगत दूरी मात्र है। एक तो भारत के उत्तर प्रदेशों में बोली जाती है और दूसरी दक्षिणी प्रदेशों में। इनके जीवनानुभव एवं विचारधारा में कई तरह की समानताएँ पाई जाती हैं। यही नहीं दोनों समाजों में सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता भी पाई जाती है। समान अनुभवों के आधार पर दोनों भाषाओं में समान कहावतें भी मिल जाती हैं। इन्हीं कहावतों का अध्ययन इस निबन्ध का विषय रहा है।

समाज में प्रचलित शिक्षित हो या अशिक्षित इस अनुपम उक्ति को जहाँ हिन्दी में कहावत नाम से अभिहित किया गया है वहाँ कोंकणी में इसे 'म्हणी' कहते हैं। दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है—साधारण उक्ति या साधारण जनता में प्रचलित उक्ति। दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति पर यदि विचार किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि इन दोनों शब्दों का मूल एक ही जगह पर है। संस्कृत में कथन का अर्थ देने वाले दो धातु प्रचलित है। 'कथ्' और 'भण्'। हिन्दी और कोंकणी में प्रयुक्त 'कहावत' और 'म्हणी' शब्दों की उत्पत्ति क्रमशः संस्कृत के इन्हीं धातुओं से हुई है। इससे स्पष्ट है कि ये शब्द मूल में एक ही भाषा से उत्पन्न हैं और इसका अर्थ भी समान रहा है।

पहले कहा जा चुका है कि कहावतें समाज से अटूट सम्बन्ध रखती हैं। असल में ये उक्तियाँ समाज से अभिन्न रही हैं। इसलिए इनके गहरे अध्ययन से इनसे सम्बन्धित समाज का भी अच्छा परिचय मिल जाता है। जीवन के जितने क्षेत्र हैं उन सब से सम्बन्धित कहावतें चलती हैं। हर भाषा में कहावतों की संख्या काफी बड़ी रही है। हिन्दी और कोंकणी में भी यही बात है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस निबन्ध में इन कहावतों को मूल रूप में तीन विभागों में रखा है—सामाजिक कहावतें, धार्मिक कहावतें और नैतिक कहावतें।

सामाजिक कहावतें

व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो सभी कहावतें सामाजिक ही हैं। क्योंकि

कहावतों का जन्म ही समाज से होता है। लेकिन जब विषयक्रम से कहावतों का अध्ययन किया जाता है तो सामाजिक कहावतों के अन्दर वे ही कहावतें आती हैं जो विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों को और सामाजिक सत्यों को अभिव्यक्त करती हैं। हिन्दी और कोंकणी में ऐसी अनेक कहावतें हैं जो समान भी हैं और कहीं-कहीं समानता न रखने पर भी विचारों की दृष्टि से आपस में बहुत ही निकट की मानी जा सकती हैं। समाज तो भिन्न स्वभाववाले व्यक्तियों का समूह है। भिन्न स्वभाव और आचरणवाले व्यक्तियों के बीच हमेशा मनमुटाव रहा करता है : इससे समाज में अक्सर झगड़े होते रहते हैं। स्त्रियों में यह प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। स्त्रियों के बीच होनेवाले इन अकारण और निरर्थक झगड़ों की झाँकी दोनों भाषाओं में प्रचलित कहावतों में मिल जाती है--

आ पड़ोसिन लड़ें (हिन्दी)
वोयिं उड्डूनु झगडूक एत्ता (कोंकणी)

इस प्रकार के झगड़े हमेशा समाज के लिए हानिकारक हैं। मानव मानव के बीच झगड़ा न हो और भाईचारा स्थापित हो जाए इसी उद्देश्य से उपदेश के रूप में निम्नलिखित कहावतें हिन्दी और कोंकणी में हैं जो पूरी शब्दगत और अर्थगत समानता को लेकर चलती हैं--

एक हाथ से ताली नहीं बजती (हिन्दी)
एक हत्तान तळियो वज्जुन्ना (कोंकणी)

भिन्न प्रकार के समाज में दिखाई पड़नेवाली विचारगत और अनुभवगत समानता इन कहावतों में स्पष्ट होती है।

समाज में दिखाई पड़नेवाले भिन्न प्रकार के सम्बन्धों को लेकर भी दोनों भाषाओं में कहावतें चलती हैं। सास-बहू सम्बन्ध तो सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह मानी हुई बात है कि समाज जैसा भी हो उसमें सास-बहू सम्बन्ध उतना सुखपूर्ण नहीं रहता। सास के जीवन काल में बहू का सुखी रहना सम्भव नहीं है। दोनों का एक घर में वास भी एक तरह से आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता है। दोनों एक-दूसरे की निरन्तर आलोचना में लगी रहती हैं। तभी तो हिन्दी में यह कहावत चलती है--

होंठ हिले न जिभिया खोली
फिर भी सास कहे बड़बोली

और भी—जिस बहुअर की वैरन सास वाका कभी न हो घर वास कोंकणी में भी इसी प्रकार के अस्वस्थ सास-बहू-सम्बन्ध को लेकर कहावतें प्रचलित हैं। मायके से ससुराल चलनेवाली लड़कियों से हँसी हँसी में कहा जाता है—

अन्दण विन्दण ना गो दुवे जीभेन सरि जा
मांयक मावांक मारूनु भायर घलतली जा

(हे बेटी, हमारे पास देने के लिए कुछ (धन) नहीं है। प्रीतियुक्त शब्दों के जरिए तुम उपाय से सास ससुर को घर से बाहर कर देना)

इस कहावत से कोंकणी समाज में प्रचलित दहेज की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है। बिना दहेज के सास ससुर बहू को ग्रहण करने के लिए तैयार न होंगे। इसीलिए उपर्युक्त कथन होता है। सास बहू के झगड़े की ओर संकेत करनेवाली और एक कहावत है—

अड्डळि मोळ्ळि मायि मेल्ली सुन्नेक बुद्धि आयली

(नारियल खुरचने का यन्त्र टूट गया, सास मर गई और बहू पछताने लगी)

संकेत है कि झगड़े की तीव्रता में बहू ने उपर्युक्त यन्त्र से सास पर प्रहार किया, बूढ़ी सास प्रहार से परलोक गई और बाद में बहू पछताने लगी। सास बहू के मनमुटाव को स्पष्ट करनेवाली कहावत हिन्दी में इस प्रकार चलती है—

आज मरी सासू कल आये आँसू।

लेकिन माँ बेटी का सम्बन्ध इसके ठीक विपरीत है। जैसी माँ वैसी बेटी। कहावत भी स्पष्ट है—

जैसी माई वैसी जाई (हिन्दी)
अवसूचे तकीत दूव (कोंकणी)

पारिवारिक सम्बन्धों के अतिरिक्त समाज में परिवार का अन्य कई तरह के व्यक्तियों से सम्बन्ध देखा जा सकता है। ये लोग भिन्न पेशों के कारण परिवार से बंधे रहते हैं। पुरोहित इनमें सुप्रधान है। पुरोहित (ब्राह्मण) जिनसे केवल समाज के कल्याण की प्रतीक्षा की जाती है अपने स्वार्थ के कारण समाज के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं। ऐसे लोगों की निन्दा में हिन्दी और कोंकणी दोनों भाषाओं में अन्यान्य कहावतें प्रचलित हैं। हिन्दी में देखिए—

जो बामन की जीभ पर सो बामन की पोथी में। अर्थात् ब्राह्मण पत्रा देखकर अपने स्वार्थ की ही कहता है। कोंकणी कहावत और भी सुन्दर है—

व्होक्कल मोरो व्होरेतु मोरो भट्टालि घडि तट्टांतु पोडो

(दुलहा दुलहिन भाड में जाए ब्राह्मण की आय में कमी न आये)

ऐसे पुरोहित समाज के लिए हानिकारक हैं। उनकी निन्दा अस्थान पर नहीं है। लोग हमेशा इनकी निन्दा करने के लिए सजग रहते हैं। जहाँ दान में कुछ देना होता है तो सबसे बुरी वस्तु ब्राह्मण को दी जाती है। हिन्दी में कहावत इस प्रकार चलती है—

कानी गाय ब्राह्मण को दान

कोंकणी कहावत इस प्रकार है—

अक्कूळेलि गायि अप्पा भट्टाक

(गाय जो दूध नहीं देती वह ब्राह्मण को दान में दी जाती है)

सामाजिक जीवन से सम्बन्धित अन्यान्य कहावतें दोनों भाषाओं में समान रूप से चलती हैं। जैसे—

दुर्जननिन्दा....अपना टेंटर देखे नहीं दूसरे की फुल्ली निहारे (हिन्दी)

अंपणाले पयाचे पोंदातूलें कुवाळें सोणु दुस्सेर्‌याले पायाचे मूळांतूलें सस्सम सोद्‌दिता (कोंकणी)

(स्वयं अपने बड़े दुर्गण को न देखकर दूसरों के छोटे दुर्गुणों की आलोचना करता फिरता है।)

स्वार्थी व्यक्ति.....आप काज बड़ा काज; पराया खाइएगा बजा,
अपना खाइए टट्टी लगा (हिन्दी)

तगतगेलें कार्य महाकार्य वेग्गळालें कज्जुबी (कोंकणी)

(स्वार्थी को अपनी चीज मूल्यवान होती है, दूसरों की तुच्छ)

बुरी नीयत......आँख की बदी भौंह के समाने (हिन्दी)

सुंगट खेल्लेल्याचे मत्यारि सोल (कोंकणी)

(बुरी नीयत छिपती नहीं)

भोजन, लेनदेन......आहारे व्योहारे लज्जा न कारे (हिन्दी)

लज्जेक गेल्यारि पेज्जेकमुट्टू (कोंकणी)

(लज्जा करने पर भोजन नहीं मिलता)

झूठी शान.....गांठ में पैसे नहीं बांकीपुर की सैर (हिन्दी)

घरांतु ना पेज्जेक वाट भायर वत्तन मिशियांक तूप (कोंकणी)

(घर में खाने तक के लिए, पैसे नहीं हैं, बाहर जाते समय बड़ा ही आडम्बर रहता है)

धार्मिक कहावतें

सामाजिक जीवन में धर्म का बड़ा महत्त्व है—

"धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः"

महाभारत की यह उक्ति तो प्रसिद्ध ही है। गीता में भी स्पष्ट कहा है—"स्वधर्मे निधनं श्रेयः" गीता और महाभारत का आदर और अनुवर्तन करनेवाले भारतीय समाज में निस्सन्देह धर्म का बड़ा महत्त्व रहा है। हर व्यक्ति का अपना धर्म रहता है जिस पर वह जीवन भर अटल रहता है। हिन्दी और कोंकणी समाज में ऐसी अनेक धार्मिक कहावतें मिलती हैं जो उनके विभिन्न आचारों और विश्वासों से सम्बन्धित हैं। इनमें समानताएँ भी दर्शनीय हैं। धार्मिक कहावतों के अन्तर्गत ईश्वर-सम्बन्धी, भाग्यकर्म-सम्बन्धी, धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्धित आदि कई प्रकार की कहावतें प्राप्त होती हैं। आस्तिक व्यक्ति हमेशा ईश्वर में विश्वास करते हैं। उसके अस्तित्व पर बल देते हैं और उसे सर्वशक्त मानते हैं। इस पृथ्वी पर दिखाई पड़नेवाली हर चीज़ को उसी ईश्वर की करामत मानते हैं। यह ईश्वर अनाथ लोगों की रक्षा करता है। संस्कृत में यह उक्ति प्रसिद्ध ही है 'अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम्'। इसी का अनुवर्तन हिन्दी और कोंकणी में समान रूप में देखा जा सकता है—

अंधे का खुदा हाफिज़ (हिन्दी)

अनाथाक देवाली रक्षा (कोंकणी)

(ईश्वर अनाथों की रक्षा करते हैं)

अनाथ और शक्तिहीन लोगों की रक्षा करनेवाले भगवान के बारे में कुछ न बोलिए। भगवान का खेल अजीब है। उनके दरबार में न्याय का ही पक्ष चलता है। जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है वह उसके अनुसार फल भोगता है। दोनों भाषाओं में इस भाव को प्रकट करने वाली उक्तियाँ मिलती हैं। जैसे—

अपनी करनी पार उतरनी (हिन्दी)

कर्माचे त कीत फल (कोंकणी)

(कर्म के अनुसार फल मिलता है)

जन्मांतर में विश्वास रखनेवाली हिन्दू जनता कर्म में भी विश्वास रखती है। संस्कृत में यह उक्ति तो प्रसिद्ध है–'कर्मानुगो गच्छति जीव एकः। इसमें यही भाव निहित है कि परलोक में चूँकि कर्ममात्र जीव का साथ देते हैं इसलिए इस संसार में जीते समय अच्छे कर्म ही किये जाएँ जिनका फल भी अच्छा निकले। इस जन्म के अच्छे कर्म जन्म जन्मान्तर में सुख सुविधाओं की प्राप्ति और सन्तुष्ट जीवन के कारण बनेंगे। इसके विपरीत बुरे कर्म तो बुरा फल देनेवाले सिद्ध होंगे। इसी कारण से लोग होनी में विश्वास रखते हैं। हिन्दी में यह कहावत चलती है–

अनहोनी होती नहीं होनी होवनहार (हिन्दी)

कोंकणी में देखिए.....कपालाचो बोरो पुसलारि वोच्चुन्ना

(ललाट लेखा मिटाये नहीं मिटती)

इसी भाव की एक और कहावत है–

जाओ नेपाल साथ आये कपाल (हिन्दी)

केल्लेलें कर्म फाटि घेत्ता (कोंकणी)

(किसी का किया कर्म उसके पीछे जाता है)

करमहीन सागर गए जहाँ रतन का ढेर, कर, छुवत घोंघा भये यही करम का फेर' वाली हिन्दी कहावत में और 'कपालांतु नत्तिल्याक कोंक्कून घल्यारि वोंक्कून वत्ता' वाली कोंकणी कहावत में यही भाव निहित है। इसी कर्मवाद पर विश्वास करते हुए महाकवि कालिदास ने कहा था–'यत्राकृतिः तत्र गुणाः वसन्ति' पीछे चलकर इसी उक्ति ने कहावत का रूप ग्रहण किया है। जैसे–

जिसकी सीरत अच्छी उसकी सूरत भी अच्छी (हिन्दी)

कर्म तकीत रूप (कोंकणी)

(कर्म के अनुसार किसी का रूप भी रहता है)

यह कर्मवाद अनोखा है। कर्म कोई करे, फल और कोई भोगे, ऐसी बात नहीं होती। जो व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करना चाहता है उसे स्वयं ही साधना करनी पड़ती है। दूसरी के द्वारा किए गए सत्कर्मों के फल पर कोई स्वर्ग को प्राप्त नहीं कर सकता। कहावत यों चलती है....

अपने मुए राम नहीं (हिन्दी)

अपण मेल्यारि अपणांक मोक्ष (कोंकणी)

(आप मरकर स्वर्ग को प्राप्त करे)

इतने नियमों के रहते हुए भी अक्सर देखा जाता है कि दुर्जन लोग औरों की मेहनत पर जीते रहते हैं और वे ही इस संसार से सुख से रहते हैं। इसी सांसारिक माया को लक्ष्य करके निम्नलिखित कहावतें दोनों भाषाओं में चलती हैं–

अढ़ाई दिन की सक्के ने भी बादशाहत कर ली (हिन्दी)

देड दिसाचें भाग्य (कोंकणी)

(डेढ़ दिन का भाग्य)

दुर्जनों का यह भाग्य क्षणिक होता है। स्पष्ट है कि आस्तिक वर्ग के विश्वासों और धर्माचरण से सम्बन्धित खुले सत्यों को समाज में प्रचलित ये कहावतें व्यक्त कर जाती हैं। यहाँ पर प्रादेशिक या भाषागत भिन्नता विचारों या विश्वासों को नहीं बदल देती।

नैतिक कहावतें

जैसे सामाजिक जीवन में धर्म का बड़ा महत्त्व है वैसे जीवन की सफलता के लिए नीति का अनुवर्तन भी आवश्यक माना जाता है। मानव जीवन में इस नैतिकता के जितने ही पक्ष हैं उतने ही प्रकार की कहावतें भी समाज में प्रचलित हैं। मानव के चार पुरुषार्थों में धर्म के बाद द्वितीय स्थान अर्थ का रहा है। अर्थ मानव जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण है। इस अर्थ से सम्बन्धित अनेक कहावतें समाज में प्रचलित हैं। देखिए....

पैसा जिसकी गाँठ में उसके ही सब यार (हिन्दी)

दामु अस्सिल्याक स येयरि चड (कोंकणी)

(जिसके हाथ में पैसा है उसके सब मेहमान)

इसी भाव को अन्योक्ति के द्वारा दोनों भाषाओं में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

जहां गुड़ होगा वहाँ मक्खियाँ तो आएँगी (हिन्दी)

गोड़ अस्सिल्ले कड़े मूयिं, म्होवु अस्सिल्लेकडे मूसु (कोंकणी)

जहाँ गुड़ है वहाँ चींटी होगी और जहाँ मधु होगा वहाँ मक्खियाँ भी। धन का व्यय ध्यान से किया जाना चाहिए। जिसके पास धन है वह

सजगता के साथ उसकी लेनदेन करता है। घमण्डी व्यक्ति धन के व्यय में संयम नहीं रखता। कहावतें यों चलती हैं–

थोड़े धन में खल इतराय (हिन्दी)
अल्पांक धन असल्यारि मध्यराति सत्तें धरता (कोंकणी)
(दुर्जनों को धन मिल जाता है तो वे बड़ा ही आड़म्बर दिखाते रहते हैं और धन का अपव्यय करते हैं)

धन के ऐसे ही अपव्यय से सम्बन्धित और एक कहावत इस प्रकार चलती है–

अस्सी की आमदनी चौरासी का खर्च (हिन्दी)
एक मेळ्यारि धा वेचु (कोंकणी)
(एक पैसा मिल जाए तो दस पैसे खर्च करता है)

ऐसे अपव्यय से धन की रक्षा नहीं हो सकती। यहाँ धन का अपमान ही होता है। कुपात्र में दान धन को नष्ट कर देता है। यह उक्ति प्रसिद्ध है–'कुपात्रदानाच्च भवेद् दरिद्रो'। दरिद्रता एक अभिशाप है। दरिद्र का समाज में आदर नहीं होता। यही नहीं भाग्य भी उसके विपरीत रहता है। हिन्दी और कोंकणी में इस भाव की कहावतें मिलती हैं....

कंगाली में आटा गीला (हिन्दी)
दरिद्र गेल्लेले कड़े नंचण्याचि खीरि (कोंकणी)

लेकिन धन का तो संसार में बड़ा महत्त्व रहता है। धनिक व्यक्ति सबके लिए मान्य रहता है। लेकिन इस धन के लिए परलोक में जगह नहीं है। मरते समय कोई धन नहीं ले जाता।

आखिर मरोगे रुपया जोड़ तोड़कर क्या करोगे (हिन्दी)
मरतसन दुड्डु व्हरप अस्सवे (कोंकणी)
(क्या मरते समय कोई पैसा ले जाता है?)

हिन्दी और कोंकणी में मैत्री से सम्बन्धित कहावतें भी समान रूप से प्राप्त होती हैं–

वक्त पड़ने पर जानिए को वैरी को मीत (हिन्दी)
आपद्कालारि पाऊँचो खरु मित्रु (कोंकणी)
(वही सच्चा मित्र है ओ आपदाओं में सहायक रहता है।)

इसी प्रकार की अनेक उपदेशात्मक कहावतें जो भिन्न विषयों से

सम्बन्धित हैं दोनों भाषाओं में पाई जाती हैं। इनमें मूल रूप से विचारों और अनुभवों की समानता देखी जा सकती है। आदर्श जीवन से सम्बन्धित एक कहावत देखिए–

प्राण जाय पर मान न जाय (हिन्दी)
प्राणु गेल्यारीयि मानु व्होडु (कोंकणी)

और एक कहावत है जिसमें व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित मूल्यवान उपदेश दिया गया है। यह दोनों भाषाओं में समान रूप से मिलती है....

आग लगे झोपड़े से जो निकले सो लाभ (हिन्दी)
लस्सल्ले घराक तळ्ळेळे कषुक्कल (कोंकणी)

दोनों भाषाओं में संसार की नश्वरता को चित्रित करनेवाली कहावतें भी खोजने पर मिल सकती हैं। जिस व्यक्ति को हम आज देखते हैं, हो सकता है वह कल दिखाई न पड़े। कहावतें ये चलती हैं–

आज है सो कल नहीं (हिन्दी)
आज दिक्किल्लो फायि ना (कोंकणी)
(जो आज है सो कल नहीं)

इसी प्रकार और एक सांसारिक सत्य की अभिव्यक्ति निम्नलिखित कहावतों में की गई है जो दोनों भाषाओं में समान हैं–

आज मुए कल दूसरा दिन (हिन्दी)
आजि मेल्यारि फायि दोनि (कोंकणी)

जितना भी निकट का सम्बन्ध हो व्यक्ति के मरने पर तत्काल ही दुःख होता है। दूसरे दिन उसे भुला दिया जाता है। यह संसार की माया है। संसार में हर दिन लोग मरते रहते हैं। लेकिन जो जीवित हैं वे अपने को अमर मानते हैं।

युधिष्ठिर ने इसी को संसार का परम आश्चर्य बताया था–

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्,
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।

इसी आश्चर्य की अभिव्यक्ति निम्नलिखित कहावतों में हुई है–

एक हँसे दूसरा दुःख में (हिन्दी)
पिक्कल्लि खोल्लि पळ्ळि म्होणु हरवि खोल्लि हस्सता (कोंकणी)
(कटहल के पीले पत्ते को झड़ता देखकर हरा पत्ता हँसता है)

लोकनीति और लोकसत्य से सम्बन्धित ये कहावतें दोनों भाषाओं में काफी प्रभावोत्पादक रह गई हैं।

यों तो कहावतों में लाक्षणिक अर्थ की ही प्रधानता रहती है जिसके कारण ये अधिकांशतः भाव प्रकाशन में भाषा के लिए अलंकरण बन जाती हैं। अनेक कहावतें ऐसी भी हैं जिनमें अन्योक्ति अलंकार देखा जा सकता है। मृगों पक्षियों आदि से सम्बन्धित अन्यान्य कहावतें इसका प्रमाण प्रस्तुत करती हैं–

कुत्तों को घी नहीं पचता (हिन्दी)
सूण्याचे पोट्टांतु तूप रब्बून्ना (कोंकणी)
(कुत्ते के पेट में घी नहीं पचता)
कुत्ते की दुम बारह बरस नलवे में रखो तो भी टेढ़ी की टेढ़ी
सूण्यांचे बाल नळियांतु घल्लें म्होणु नीट जायत वे (कोंकणी)
(क्या कुत्ते की पूँछ नलवे में रखने पर सीधी हो सकती है)
गद्धा पीटे घोड़ा नहीं होता (हिन्दी)
गड़वाक घस्सिल्यारि घोड़ो जायना (कोंकणी)
(गद्धे को नहलाने पर घोड़ा नहीं बनता)

इसी प्रकार अन्य कई कहावतें दोनों भाषाओं से प्राप्त हो सकती हैं जो कौआ, बिल्ली और अन्यान्य पशु-पक्षियों से सम्बन्धित हैं। इनमें प्रायः सभी कहावतें लक्ष्यार्थ से आपूरित रहती हैं और इसके द्वारा मनुष्य की ओर व्यंग्य करती रहती हैं। इस प्रकार समग्र रूप से कहावतों का अध्ययन करने पर यह बात व्यक्त होती है कि जीवन के जितने पहलू हैं उनसे सम्बन्धित विभिन्न कहावतें भी चलती हैं। सभी भाषाओं में ऐसी कहावतों के दर्शन होते हैं। गहन अध्ययन के द्वारा यह साबित किया जा सकता है कि भाव के अनुभवों से उद्भूत ये कहावतें भाषाओं की भिन्नता को दूर करती हुई भावात्मक एकता की ओर लक्ष्य करती चलती हैं। हिन्दी और कोंकणी में प्रचलित इन समान कहावतों का अध्ययन इसी का प्रमाण है कि प्रादेशिक भिन्नताओं के रहते हुए भी दोनों भाषाओं का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों की विचारधारा एवं अनुभव समान रहे हैं और यह समानता अदृश्य रूप में मनुष्य-मनुष्य के बीच वर्तमान एकता की ओर लक्ष्य करती है।

हिन्दी तथा कोंकणी बाल-साहित्य में शब्द-प्रयोग

बालसाहित्य बालकों के लिए निर्मित साहित्य होता है। उसकी भाषा सरल एवं मनोरंजक रहती है। क्योंकि ऐसी सामग्री बालकों के छोटे मन को अभिभूत करती रहती है। उदाहरण के लिए–

लड्डू पेड़ा सरदार
चले घूमने को बाजार
बरफी रानी भी थीं साथ
पकड़े थीं दोनों के हाथ

कोंकणी में–

मावशी येतली म्हजी मावशी येतली
गोड गोड लाडू घेवून मावशी येतली
बर्‍यो बर्‍यो काणयो सांगूक मावशी येतली
(मौसी आएगी, मौसी आएगी,
मीठे-मीठे लड्डू लेकर मौसी आएगी
अच्छी-अच्छी कहानियाँ लेकर मौसी आएगी)

लड्डू, पेड़ा, बरफी एवं कहानियाँ बालकों को बहुत प्रभावित करती हैं। उसकी सुन्दरता एवं मधुरता इन गीतों में पायी जाती है। बाल साहित्य का बौद्धिक वातावरण बालकों के लिए अनुकूल रहे; तभी वे उसका अध्ययन करते हुए उसके जरिए व्यक्तित्व विकास सम्भव कर सकें। सरल एवं मनोरंजक शब्दावली बालकों के लिए यह कार्य सरल बना देती है। बाल

साहित्य की शब्दावली यदि कठिन रहे तो विषय की समझ बालकों के लिए कठिन पड़ सकती है। उदाहरण के लिए बालकों की कहानियों में प्रयुक्त 'कुबुद्धि', 'मण्डूकबुद्धि', 'गृध्रपक्षी', 'सत्स्वभाव', 'प्रतिक्रियातत्पर', 'परक्लेशप्रिय', 'जन्मनार्जित' आदि संस्कृत गन्धी शब्द बालकों के लिए कठिन रहते हैं। इन शब्दों का अर्थ बालकों की समझ के परे रहता है।

बालक अच्छे हों तो समाज अच्छा रहता है। बालक ठीक नहीं हो तो समाज भी बुरा रहता है। बालकों के साहित्य का निर्माण करते समय यह तत्व मन में रखना जरूरी है। पुराने लोगों ने बालकों की अच्छी चलन के लिए सुन्दर गीतों एवं कहानियों की रचना की है। इनमें उनका ज्ञान-विज्ञान ही नहीं आचरण संहिता भी छिपी पड़ी है। जहाँ बालसाहित्य में प्रयुक्त शब्द सरल एवं मनोहर रहें वहाँ बालक उन शब्दों को भली-भांति समझ सकते हैं और उन्हें याद रखने में कोई कठिनाई नहीं रहती जिसके फलस्वरूप उनका ज्ञान-विज्ञान बढ़ता है और आचरण ठीक तरह से होता है। बालकों का भाषागत ज्ञान भी ऐसी शब्दावली के माध्यम से बढ़ता रहता है। कई विषयों से सम्बन्धित गीतों एवं कहानियों में उन विषयों से सम्बन्धित शब्दावली मिलती है जिन्हें सुनकर एवं दुहराकर बच्चे ज्ञानार्जन कर लेते हैं। बालकों की जिज्ञासाएँ ऐसी शब्दावली के माध्यम से शान्त हो जाती हैं। मनोहर तथा हितकारी आचरण भी कहानियों के माध्यम से बच्चे सीख जाते हैं। पंचतन्त्र, हितोपदेश, राजा-रानी कथा, इसके सुन्दर प्रमाण हैं।

साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब होता है। मानव जीवन पाँच अवस्थाओं में बीतता है। बाल्यावस्था, युवावस्था, गृहस्थ की अवस्था, वृद्धावस्था एवं संन्यास। इन अवस्थाओं को लेकर ही साहित्य का निर्माण भी होता है और इसी साहित्य के जरिए साहित्यकार अस्मिता की खोज करता रहता है। साहित्यकार का ज्ञान जिस अवस्था को लेकर अधिक रहता है वह उसी पर साहित्य रचना करता है। बालमनोविज्ञान से परिचित साहित्यकार बालकों के लिए साहित्य रचना करता है। इस साहित्य में बालकों की मानसिक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। इस अभिव्यक्ति के लिए अनुयोज्य शब्दावली की खोज अत्यधिक आवश्यक रहती है। भामह के अनुसार तो साहित्य सार्थक शब्दों से ही बनता है। शब्दों के बिना अर्थ नहीं टिकते और अर्थों के बिना शब्द भी नहीं रहते। तभी तो गोस्वामी तुलसीदास ने

कहा था–'गिरा अरथ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। शब्द एवं अर्थ आपस में सागर एवं लहरों के समान बंधे रहते हैं। देखने में अलग-अलग प्रतीत होते हैं बल्कि मूल में एक ही हैं। इस प्रकार साहित्य शब्द एवं अर्थ के समुचित योग से बनता है। साहित्य के प्रकार के अनुसार ये शब्द एवं अर्थ परिवर्तित होते रहते हैं। बालकों के साहित्य के लिए बालमन के अनुयोज्य शब्द एवं अर्थ को ढूँढ़ना अत्यन्त आवश्यक होता है।

बाल साहित्य एवं उसकी शब्दावली

बाल साहित्य की शब्दावली जैसे कि ऊपर कहा गया है, सरल एवं सहज रहती है। फिर भी कभी-कभी कई अमूर्त भावों की अभिव्यक्ति के लिए कवि प्रतीकों का प्रयोग भी करता रहता है। इस प्रकार के प्रयोगों में बन्दर बालकों के नटखट स्वभाव का प्रतीक बनता है। बालक अपने चारों ओर पाए जाने वाले पक्षिमृगादियों से बिल्कुल परिचित रहता है और साहित्य में इनका वर्णन पाकर सन्तुष्ट हो जाता है। बाल साहित्य में इस प्रकार की शब्दावली बहुत अधिक मिलती है। यह शब्दावली, सौकुमार्य, प्रसाद गुण, मनोहारिता एवं माधुर्य से युक्त रहती है।

माधुर्य बाल साहित्य का प्राण तत्व है। बालकों की अनुभूतियों की तालबद्ध एवं लयबद्ध संगीतात्मक अभिव्यक्ति शब्दावली के माध्यम से ही होती है। यह शब्दावली बालकों के स्वभाव, रुचि, अवस्था आदि के अनुसार परिवर्तित होकर आती है। इस शब्दावली में उनकी अनुभूति, कल्पना, विवेकशून्यता सब कुछ देखने को मिलता है। पक्षिमृगादि को बालक मानव का रूप दे देता है। पंचतन्त्र में ऐसी ही कथाओं का चित्रण हुआ है। कुत्ता, बिल्ली, तितली, चूहा, तोता, मैना ये सब बालकों को बहुत अच्छे लगते हैं। इनको चित्रित करने वाली शब्दावली बाल साहित्य का सर्वस्व मानी जा सकती है।

कोंकणी का यह गीत देखिए–

कुतूं करता भूक भूक बिलू करता म्योव म्योव
चिऊ करता चीव चीव़, काऊ करता कोव कोव
(कुत्ता करता भौं भौं, बिल्ली करती म्योव म्योव
चूहा करता चीं चीं कौआ करता कोव कोव)

हिन्दी में–

कू कू कू कू कोयल बोली
राजाजी के बाग से
कू कू कू कू कोयल बोली
मीठे मीठे राग से

बालकों के चंचल स्वभाव के अनुरूप चंचल गतिशील शब्दावली बालसाहित्य का प्राण है। बालक स्वभावतः प्रकृति से अधिक नाता जोड़ते हैं। प्रकृति से सम्बन्धित शब्दावली उनके गीतों एवं कहानियों को ज्यादा मनोहारिता प्रदान करती है। शब्दों की पुनरुक्ति बच्चों को बड़ा ही आनन्द प्रदान करती है। ऐसी शब्दावली बाल-गीतों में अधिक मात्रा में मिलती है। बालगीतों एवं कहानियों का मुख्य उद्देश्य बालकों का शिक्षण होता है। इसके फलस्वरूप बालकों में गुण बढ़ते हैं। शिक्षा देने की यह शब्दावली बालसाहित्य में अधिक मात्रा में मिलती है। बालकों की भावनाओं के विकास को उद्देश्य बनाकर प्रयुक्त बाल साहित्य की शब्दावली भिन्न-भिन्न भावों को लेकर सामने आती है। बालकों के चंचल मन को एकाग्र बनाने के उद्देश्य से ही शब्दों की पुनरुक्ति का प्रयोग रहता है। समाज के आदर्शों को प्रकट करने के खातिर प्रयुक्त शब्दावली भी बालसाहित्य में देखी जा सकती है। ऐसी शब्दावली बालकों के मनोविज्ञान से अधिक सम्बन्ध रखती है।

भर्तृहरि ने शब्द को ही साहित्य का मूल आधार माना है–"सा सर्वविधशिल्पानां कलानां चौपबन्धिनी"। शब्दों के माध्यम से अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। शब्दों के अर्थ निर्धारण के कई तत्व बताए गए हैं। इसमें मुख्य हैं वक्ता, बोद्धव्य प्रकरण, देश काल आदि। जहाँ तक बाल साहित्य की शब्दावली का प्रश्न है, बोद्धव्य तत्व की ही अधिक प्रमुखता रहती है।

बाल साहित्य का आस्वादन करनेवाले सहृदय बालक होते हैं इसलिए उनके अनुरूप ही शब्दावली का प्रयोग भी करना चाहिए। अश्लील शब्दावली, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ प्रधान शब्दावली, कठिन शब्दावली, द्वयार्थक शब्दावली जितनी कम रहे उतना ही अच्छा।

व्याकरण से जुड़ी हुई विशेष सार्थक ध्वनि समूह को शब्द कहते हैं।

महाकवि कालिदास ने वागर्थाविवसम्पृक्तो कहकर शब्द और अर्थ के अटूट सम्बन्ध को व्यक्त किया है। शब्द के बारे में जानकारी नहीं है तो अर्थ की समझ कठिन होती है। किसी भी विषय से सम्बन्धित शब्दावली के अध्ययन के प्रकरण में शब्दावली का वर्गीकरण अत्यन्त महत्व का रहता है। ध्वनि को आधार मानकर शब्दों के दो भेद किए गए हैं। उच्चरित और अनुच्चरित। ये शब्द अनुरणनात्मक होते हैं। वृक्षलतादि नदी, पानी आदि से उत्पन्न शब्द अनुच्चरित, प्राणियों द्वारा बोले जाने वाले शब्द उच्चरित। बाल साहित्य में इनका खूब प्रयोग मिलता है। अर्थ को आधार बनाकर देखें तो बाल साहित्य में जातिवाचक, गुणवाचक, एकार्थी, सरल और मूर्त शब्द देखने को मिलते हैं। लक्षक शब्द बाल मन को धक्का पहुँचाने वाले हैं। ये शब्द उनकी छोटी बुद्धि के अनुयोज्य नहीं।

हिन्दी तथा कोंकणी बाल साहित्य एवं शब्दावली

बाल साहित्य के अन्तर्गत मूलतः बाल गीत, कहानियाँ एवं पहेलियाँ आती हैं जो अनुभवी लोगों द्वारा तैयार की हुई होती हैं एवं जिनका प्रयोग बच्चों को सुलाते समय और खिलाते समय किया जाता है। यहाँ साहित्य रूप जो भी हो शब्दावली छोटे बच्चों के योग्य, उल्लासमयी सरल एवं मनोहर होती है। इस शब्दावली के जरिए बच्चों को चारों ओर के वातावरण से परिचित कराने का विशेष प्रयत्न रहता है। इस प्रकार बाल साहित्य मूलतः बालकों के चारों ओर दिखाई पड़नेवाली चीजों से सम्बन्ध रखनेवाली शब्दावली को अपनाकर तैयार होता है। यह शब्दावली मूल रूप से आठ तरह की होती है–

1. नातों से सम्बन्धित
2. खान-पान से सम्बन्धित
3. खेल-सम्बन्धी
4. प्रकृति से सम्बन्धित
5. पशु-पक्षियों से सम्बन्धित
6. अनुरणनात्मक
7. संख्या रंग-सम्बन्धी
8. आकार सम्बन्धी

1. नातों से सम्बन्धित शब्दावली

बालकों को नातों से परिचित कराने के लिए नातों से सम्बन्धित शब्दावली का खूब प्रयोग होता है–जैसे मामा, मामी, चाचा, चाची, मौसी, अक्का,

माता, पिता, दादा-दादी। जैसे कोंकणी में–

कोक्करे को कोम्बया यो मम्मांथँय वचाक चो
मामील्या थकून बोब्भो खावँचाक यो

हिन्दी में–

देखो आती नानी। सुनले एक कहानी।।
भाई साहब आए। देखो क्या है लाए
चाचाजी ने हँस कर। चपत जमाई कसकर।।
बाबूजी के आगे। माँ से लड्डू माँगे।
बढ़िया मिली मिठाई। सबने मौज उड़ाई।।

इन उदाहरणों में मामा-मामी, नाना, चाचा, भाई बाबूजी, माँ आदि के मधुर सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के पकवानों से सम्बद्ध करके दिखाए गए हैं जिनसे बच्चे आसानी से इन सम्बन्धों के महत्व से अवगत हो जाएँ। इनके अलावा अन्य कई नाते भी गीतों में मिलते रहते हैं।

2. खान-पान से सम्बन्धित शब्दावली

खाना बच्चों के लिए प्यारा होता है। चारों ओर के पक्षिमृगादियों से जोड़कर खान-पान सम्बन्धी शब्दावली का प्रयोग बालगीतों में काफी मात्रा में मिलता है। जैसे–

हुआ सबेरा मुर्गा बोला
घर से चला टहलने भोला
मिता राह में उसको भालू
हुआ माँगने रोटी आलू
डाल डाल पर झूम रही है
गुच्छों में हर मेल मिठाई
पेड़े लाल सुनहरे लड्डू
मुँह में घुलती बाल मिठाई।

इन उदाहरणों में आलू रोटी का योग काल्पनिक एवं मनोरंजक ढंग से बच्चों के आगे प्रस्तुत किया गया है। दूसरे उदाहरण में असम्भव बात को भी सम्भव करके दिखाया गया है। वृक्षों की डालों पर फलों के स्थान पर यदि मिठाइयाँ लग जाएँ, पेड़े, लाल सुनहरे लड्डू आदि हो तो बच्चों

को इससे बढ़कर मनोरंजन क्या हो सकता है। कोंकणी में भी खान-पान से सम्बन्धित गीत मिलते हैं जैसे–

कोक्करे को कोम्ब्या चो शेळ सित्ता उण्डि
तेल्लाचो थेम्बो, नोण्चो अम्बो जेवतोलो-जल्यार यो।

एक स्वादिष्ट बल्कि लघु आहार की ओर इन पंक्तियों में संकेत मिलता है, वह भी मुर्गो को सम्बोधित करके गाया गया है। और एक उदाहरण देखिए, जिसमें खान पान के साथ विशेषण शब्दावली का भी परिचय प्राप्त कराया जाता है–

अम्मा माका लाडू दी बूँदीचो लाडू दी
गोल गोल लाडू दी गोड गोड लाडू दी
व्होड व्होड लाडू दी, मोव मोव लाडू दी
(माँ मुझे लड्डू दो, बूँदी के लड्डू दो, गोल-गोल लड्डू दो
मधुर मधुर लड्डू दो, बड़े-बड़े लड्डू दो, मुलायम मुलायम लड्डू दो।)

विशेषणों की पुनरुक्ति विशेषण शब्दावली के शिक्षण के उद्देश्य से दी गई है।

3. खेल-सम्बन्धी शब्दावली

खेल बच्चों को अत्यधिक प्रिय होता है। खेलना उनके लिए सब कुछ होता है। तरह-तरह के खेल एवं उनसे सम्बन्धित शब्दावली बाल साहित्य की अपनी विशेषता है। कोई वयस्क दोनों घुटनों को बराबर मोड़ लेता है और टाँगों पर छोटे बच्चों को बिठाकर उसे झुलाते हुए गाता रहता है–

खन्ना मन्ना लेई थे, एक कौडिया पाई थे
गंगा में बहाई थे, गंगा माई बालू दिहिन
ऊ बालू हम भुजवाक दीन। भुजवा हम्मै लाई दिहेस
ऊ घसिया हम गैया कु दीन। गैया हम्मै दूध दिहिसि
वहि दुधवा का खीर पकायऊं। खिरिया गै जुड़ाई
भैया गै कोहाँई, बहिनी गै मनावै,
चला भैया खा चला, भैया मारेन दुइ लात।

इस गीत में ऐसी शब्दावली की भरमार है जो छोटे बच्चों के लिए नई है। इसका आगे-पीछे किन्हीं क्रियाओं का आपसी सम्बन्ध जोड़कर

किसी घटना के रोचक वर्णन के जरिए बच्चों तक पहुँचाने का प्रयत्न हुआ करता है जिसे बच्चे मनोरंजक ढंग से अपनाते रहते हैं। कोंकणी में ऐसा ही एक गीत इस प्रकार है—

हल्लून धल्लून मल्लका पीट वट्टून कलौंका
पिट्टां पळ्ळो बोरोडु म्हन्तारय्ये खर्वोडु
तं पीट गायक घालें गायन आवंका दूध दिल्ले
तं दूध देवा दिल्लें देवान आंवका प्रसाद दिलो
तो प्रसाद मत्यां मळ्ळो, मत्यान आवंका उव्वो दिल्यो
त्यो उव्वो पक्कयार घाल्यो। पक्कयान आवंका कोल्लु दिल्लो
तो कोल्लु चींचे घल्लो। चिंचेन आंवका धोलु दिल्लो।

इसमें हल्लपॅ, धल्लॅप (हिलना, डुलना) पीट वट्टपॅ, बोरोडु, खर्वोडु, म्हन्तारि (बुढ़िया) गायि (गाय) दूध (दूध) देव (देव) प्रसाद (प्रसाद) मत्तें (सर) माळॅपॅ (केश सजाना) उव्वो (जूँ) पक्कें (छप्पर) कोल्लु (नारियल का सूखा पत्ता) चींच (इमली) धोलु (धोल) आदि शब्द एक साथ गूँथे गए हैं। छोटे बच्चे इस शब्दावली को खूब याद रखेंगे।

4. प्रकृति से सम्बन्धित शब्दावली

बच्चे अपने चारों ओर के फलफूल वृक्ष-लतादियों से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाते हैं। फलतः प्रकृति से सम्बन्धित शब्दावली बालगीतों में बहुतायत में मिलती है। उदाहरण के लिए हिन्दी का यह गीत—

ईची मींची आँखें भींची
आया लटकू बैठा मटकू
खट खट खटका फूटा मटका
खीं खीं बिल्ली, टिल्ली लिल्ली।
उड़े झील से बगुले राजा।
मछली लगी बजाने बाजा।।
पेट पीट कर मेंढक भैया।
लगे नाचने ता ता थैया।।

कोंकणी में देखिए—

अबोलीं शेंवतीं आत्यात थंय नाच रे बाळू थय तक थय

जायो जूयो मेळटात थंय नाच रे बाळू थय तक थय
मोगरीं चांपीं फूल्यात थंय नाच रे बाळू थय तक थय

अनुप्रास के सौन्दर्य से मनोरंजन प्रदान करने वाले इन बालगीतों में बालकों के सुनने गाने एवं समझने योग्य कई शब्द प्रस्तुत किए गए हैं। हिन्दी बालगीत में प्राकृतिक जीव-जन्तुओं का वर्णन है जैसे बिल्ली, टिल्ली, बगुला, मछली, मेंढक आदि और कोंकणी गीत में फूलों के नाम जैसे अबोलीं, शेवतीं जायो जूयो, मोगरीं, चांपी आदि गिनाए गए हैं। इन शब्दों के माध्यम से बच्चे प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित करने में सफल रह जाते हैं।

5. पशु-पक्षियों से सम्बन्धित शब्दावली

कौआ, कीर, मैना, गिलहरी, बिल्ली, कुत्ता, गाय, मोर, मेंढकी आदि बच्चों के लिए प्रियंकर जीव हैं। मेंढकी की बात क्या कहना? वह तो बच्चों की इष्टमित्र होती है। इनका स्थान बालगीतों में अनुपेक्षित रहता है। बच्चों की दिनचर्या कौआ, कीर, बिल्ली, कुत्ता आदि पालतू जन्तुओं के साथ शुरू होती है–कोंकणी का एक गीत देखिए–

यो रे कीरा उलय उलय बाबू तोंड धुयेता
यो रे कावळ्या तकलि हालय बाबू आमचो जेवता
यो रे कोम्बया शेकरें फुलय बाबू आमचो आवँता
(आ रे कीर, मधुर बोल, लाडला मुख धोता है
आरे कौआ, सर हिला लाडला भोजन करता है
आ रे मुरगा, कलगी फुला लाडला आचमन करता है।)

मुँह धोना, दाँत घिसना, खाना खाना, आचमन करना सब दिनचर्या के अंग हैं। हिन्दी में देखिए–

बीत चुकीं आलस की घड़ियाँ, जाग उठीं अब सारी चिड़ियाँ
जागे फूल खिली अब कलियाँ, तू भी जागो और जगाओ।
चीं चीं चीं चीं बोल सुनाती। घास फूस का महल बनाती
उसमें रहती चिड़िया रानी, चुराती दाना पीती पानी
सोन ताल में रोज नहाती। सोने का है पैर चमकाती।

अनुरणनात्मक शब्द

अनुरणनात्मक शब्द बालगीतों में अक्सर पाए जाते हैं। इसीलिए कि ये शब्द बच्चों के लिए उत्साह प्रदान करने वाले हैं। जैसे—

गली गली में भों-भों, भों-भों
बिगुल बजाता भोला
लड़की गैया भों भों भों भों
उड़ी चिरैया भों भों भों भों
चौंका भैया भों-भों-भों-भों
कुत्ता भों-भों बोला

इसमें अनुरणन के साथ वह सरल मनोरंजक तत्व भी विद्यमान है जो बच्चों को अच्छा लगता है। इसी प्रकार कोंकणी में देखिए—

भुक भुक भुक भुक भुक सूणों भोंकता
म्यांव म्यांव म्यांव म्यांव माजर मिचेता
हम्मा हम्मा हम्मा हम्मा गाय हँबेता
में में में में बोकड़ी मेमेता
काव काव काव काव कावळो काकेता
कुहू कुहू कुहू कुहू कोगुळ गायता

इस गीत में पक्षिमृगादियों के शब्दों का अनुकरण बच्चों के उत्साह को बढ़ाने में बहुत सहायक दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चों के गीतों में शब्दावली की प्रमुखता रहती है। बच्चों को भाषा पढ़ाने के उद्देश्य से रचित ये गीत उनकी मनपसन्द शब्दावली को लेकर सामने आते हैं। छोटे-छोटे गीतों में शब्दों की इतनी भरमार रहती है कि ये शब्द बच्चों को व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी तत्व पढ़ाने में समर्थ रहते हैं। कोंकणी का निम्नलिखित गीत इसका सुन्दर प्रमाण है।

कुंबकुंबरा दी माती कोरूँ कोळ्सूलो घालूँ बायँतू
काडूँ उद्दाक, धूव तोंड, खाऊँ कीडी कुट्स् कुट्स्
(कुम्हार माटी दे दो, घड़ा बनाएँगे, कुएँ में डालेंगे
पानी भरेंगे, मुँह धोएँगे, खाएँगे टुस् टुस्)

बच्चों को मनोरंजन प्रदान करने के साथ-साथ ज्ञान के तत्व सामने रखनेवाले इस गीत को बालगीतों में उन्नत स्थान दिया जा सकता है। इस छोटे से गीत में कुम्हार के द्वारा माटी लाना, घड़ा बनाना कुएँ से पानी निकालना, मुँह धोना ओर खाना खाने की क्रियाएँ बच्चों के सामने रखी गई हैं।

पहेलियाँ और शब्दावली

बच्चों को शब्दावली का परिचय देने एवं उनकी छोटी-सी बुद्धि को बल प्रदान करने के खातिर अक्सर पहेलियों का प्रयोग किया जाता है। ये पहेलियाँ बच्चों का ज्ञान बढ़ाती हैं और उनके मन की जिज्ञासाओं को बढ़ाती हुई उनका उचित उत्तर प्रदान करती रहती हैं। इसकी मूलतः तीन प्रक्रियाएँ हैं–(1) प्रश्नों के जरिए बच्चों में जिज्ञासा बढ़ाना, (2) उन्हें सोचने के लिए प्रेरित करना और (3) उत्तर प्रदान करते हुए इस जिज्ञासा को शान्त करना। बच्चों के मानसिक उत्साह को बढ़ानेवाली ये पहेलियाँ उनके ज्ञान को भी बढ़ाने में अत्याधिक सहायता प्रदान करती हैं।

पहेलियों द्वारा बच्चों को अनेक प्रकार की वस्तुओं के रूप गुण आकार तथा स्वभाव के विषय में जानकारी प्रदान की जा सकती है। चिन्तन के जरिए मस्तिष्क में सचेतनता जगती है और मनोवैज्ञानिक पक्ष यह है कि इनके जरिए बच्चों में जिज्ञासा बढ़ जाती है।

हिन्दी–

ज्यों ज्यों सांप नाल को खाय
सूखे नाल सांप मर जाए — दिया

कोंकणी–

कोडीत मधे कुवंरन बसल्या
तानेन गळो सुकल्यार मरोन पडटा

हिन्दी–

मारने में लाठी खाने में मिठाई
मेरी पहेली बूझो भाई — ईख

कोंकणी–

सुक्या बेतांतले व्हांवता उद्दाक
(सूखे बेंत से पानी बहता है)

इन पहेलियों में जो परीक्षण रहता है उसमें जीतने से भी प्रसन्नता मिलती है और हारने से भी। इसलिए ये पहेलियाँ बच्चों के लिए प्रियंकर होती हैं। शब्दों की खिलवाड़ से मनोरंजन करने के उपाय पहेलियों में खूब मिलते हैं इससे अनेक प्रकार की शब्दावली से परिचय, अर्थ ज्ञान आदि को बढ़ाने के लिए इन पहेलियों का उपयोग होता है। बच्चों की शब्दावली की सम्पन्नता के लिए पहेलियों की विधा का अभ्यास अत्युत्तम है। हर एक पहेली में बच्चे नए नए शब्दों से परिचय पाते हैं। इस प्रक्रिया में शब्द-गुण, शब्द-ज्ञान, शब्दार्थ, शब्द-शक्ति, शब्द-चयन, शब्द-साधना और शब्द-निर्माण का बोध हो जाता है।

इस प्रकार बाल साहित्य में शब्दावली सरल, व्यावहारिक, लयात्मक, रागात्मक, छन्दोबद्ध और स्वरादि अक्षरों को प्रमुखता देकर संगीत के जरिए प्रस्तुत की जाती है। इसे पाकर बालकों का छोटा मन अत्यधिक आनन्दित हो जाता है। अनुरणनात्मक शब्दावली इस साहित्य की विशेषता है। बालगीतों में रूप तत्व, शब्द सौन्दर्य आदि प्रमुख होते हैं। बालकों के विचारों के अनुयोज्य शब्दावली इन गीतों में प्रयुक्त होती है। यही शब्दावली बालगीतों की सफलता का एकमात्र कारण है। गीत बालकों के लिए प्रिय होते हैं। इसीलिए उनके लिए गीतात्मक साहित्य का निर्माण किया जाता है। ये गीत बच्चों के बीच बहुत ही प्रचार पाते हैं और उनकी शब्दावली की पुनरुक्ति, अनुप्रास, लय आदि उन्हें आनन्द प्रदान करते हैं। माधुर्य इस शब्दावली की प्रमुख विशेषता है।

कोंकणी-हिन्दी का काव्यानुवाद

काव्यानुवाद से तात्पर्य काव्य के अनुवाद से है। अनुवाद में किसी भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में दुहराने का कार्य होता है। यह अपने में बहुत कठिन होता है और इस कार्य को बड़ी सजगता से करना होता है। जब अनुवाद काव्य का हो तो वह और भी कठिन होता है क्योंकि काव्य 'रसात्मक वाक्य' या 'रमणीयार्थप्रतिवादक शब्द' है। रसात्मक वाक्य का अनुवाद तो बहुत कठिन होता है। एक भाषा में चित्रित रस का दूसरी भाषा में अवतरण उतनी आसानी से सम्भव नहीं है। वैसे ही रमणीय अर्थ भी भाषा के अनुसार बदलते रहते हैं। जब भाषाएँ एक परिवार की हों तो ये समस्यायें कुछ हद तक कम कही जा सकती हैं। कोंकणी और हिन्दी एक ही परिवार की भाषाएँ हैं और इन भाषाओं के बीच का अनुवाद कुछ हद तक आसान भी कहा जा सकता है। फिर भी दोनों भाषाओं की अलग-अलग प्रवृत्तियों और कुछ सांस्कृतिक भिन्नताओं को आधार बनाकर दोनों भाषाओं के बीच किए जाने वाले अनुवाद को थोड़ा बहुत क्लिष्ट भी माना जा सकता है।

कोंकणी में अनुवाद के लिए 'अणकार' शब्द चलता है जिसका अर्थ है अनुकरण। यह अनुकरण अपने में उतना आसान नहीं कहा जा सकता। लेकिन अनुवाद में यह होता ही रहता है। अनुवादक को बड़ी ही सजगता से काम लेना होता है। उसे स्रोत एवं लक्ष्य भाषा का सम्यक ज्ञान रखना आवश्यक होता है। जब अनुवाद काव्य का हो तो यह काम और भी कठिन होता है। अनुवादक इस कार्य में तभी सफल हो सकता

है जब वह काव्य की विशेषताओं से भी परिचित हो। काव्य की भाषा तो हमेशा सौन्दर्य से युक्त रहती है। लय, ताल, अलंकार आदि के कारण काव्यभाषा का अनुवाद अत्यन्त कठिन होता है। जहाँ तक कोंकणी हिन्दी काव्यानुवाद की बात है, वहाँ कोकणी की कुछ अलग प्रवृत्तियाँ होती हैं जो हिन्दी में नहीं मिलतीं। कोंकणी भाषा में विशष माधुर्य रहता है जो हिन्दी में नहीं मिल सकता। शब्दों की पुनरुक्ति, ध्वनियों का विशेष प्रयोग, स्वरलय एवं स्वराघात इस भाषा की विशेषताएँ हैं। अनुनासिकता की अधिकता इसके माधुर्य को और भी बढ़ाती है। यह काव्य रचना के अनुकूल रहता है। इसलिए कोंकणी का कोई कविता खण्ड हिन्दी या किसी अन्य भारतीय भाषा में अनूदित किया जाय तो इसका माधुर्य नष्ट हो जाता है। एक उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जा सकता है–

प्राणाकक्षय बुद्धीक भय	प्राणों को क्षय बुद्धि को भय
फल्यांक जंय कालचीच वंय	जहाँ कल की आदत कल की जय
अचलाथंय स्वातन्त्र्य तें	वहाँ का यह स्वातन्त्र्य
स्वातन्त्र्य नृप स्वातन्त्र्य न्हय	स्वातन्त्र्य नहीं, स्वातन्त्र्य नहीं

कोंकणी के इस कविताखण्ड का हिन्दी अनुवाद कुछ हद तक सफल रहा है। एक ही परिवार की भाषाएँ होने के नाते शब्दावली और अर्थ में समानता रही। फिर भी स्रोतभाषा की प्रकृति एवं प्रयोग पूर्ण रूप से लक्ष्यभाषा में उतर न सके। कोंकणी कविता का सुन्दर ताल एवं लय हिन्दी में न आ सका। कोंकणी का 'क्षय', 'भय', 'जय', 'थंय' और न्हय का पुनः प्रयोग मूल की पंक्तियों में विशेष सौन्दर्य का कारण बनता है। हिन्दी में यह सम्भव नहीं है। हिन्दी अनुवाद में अर्थ को समझने में थोड़ा भ्रम भी पैदा हो सकता है। दूसरी पंक्ति में दो बार 'कल' शब्द का प्रयोग पढ़ने वाले के मन में भ्रम पैदा कर सकता है। एक शब्द गए हुए 'कल' का सूचक है तो दूसरा 'कल' आनेवाले कल का सूचक है। मूल में इसके लिए दो भिन्न शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अनुवाद में इस पर ध्यान नहीं दिया गया है।

व्याकरण सम्बन्धी समस्याएँ

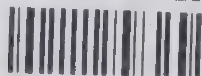
स्रोतभाषा एवं लक्ष्यभाषा की प्रकृति कहीं-कहीं एक-दूसरे से भिन्न रहती हैं। ऐसी हालत में अनुवाद भ्रामक एवं कठिन भी हो जाता है। जहाँ तक

कोंकणी का सम्बन्ध है, वह एक ऐसी भाषा है जो माधुर्य से युक्त, गीतात्मक एवं लयात्मकता से पूर्ण है। इसमें स्वराघात की भी प्रमुखता है। इसी कारण से अर्थ परिवर्तन भी आसानी से हो जाता है। कोंकणी शब्द 'करतलो' का अर्थ है (वह करेगा) यही शब्द स्वराघात की सहायता से प्रश्नवाचक भी बन सकता है। अनुवाद के समय भाषा की इस प्रवृत्ति पर विशेष ध्यान देना होता है। इसी प्रकार ध्वनियों में आने वाले छोटे-छोटे परिवर्तन अर्थपरिवर्तन का कारण बन जाते हैं। जैसे कीटि (चिनगारी) कीडि (कीडा); पट्टळि (पोटली) पड्डळि (परवल का बेल); वोट (उँगली) बोड (मुंजाहुआसिर); मोट (गठरी); मोड (बादल); सारि (साठ) साडि (साडी); मेल्लो (मरा); मेळ्ळो (मिला); खेल्लि (खाया) खेळ्ळि (खेला); मोवु (मुलायम) म्होवु (मधु); पोवलें (तैर गया); पोवळें (प्रवाल); आदि। इसी प्रकार अनुनासिकता से भी इस भाषा में शब्दों में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। जैसे वट्टप (पीसना) बँटप (बाँटना); पाचवें (हरा) पाँचवें (पाँचवाँ); ती (वह) नीं (वे) आदि। अनुवादक को भाषा की इस प्रकृति पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। थोड़ी-सी असावधानी गलत अर्थकल्पना का कारण बन सकती है।

कोंकणी में तीन लिंग हैं और हिन्दी में दो लिंग। संस्कृत के समान कोंकणी में भी नपुंसकलिंग का अस्तित्व है। नपुंसक लिंग के शब्दों का बहुवचन तैयार करने के लिए शब्द के साथ केवल अनुनासिक जोड़ा जाता है। जैसे गाँव > गाँवँ; अक्षर > अक्षारां; अक्षत > अक्षतां; पोरस > पोरसाँ आदि। दोनों रूपों में बड़ा अन्तर न रहने के कारण अनुवादक को कभी भ्रम हो सकता है। जब तक इस तथ्य से सजग नहीं रहता अनुवाद में त्रुटियाँ आ ही जाती हैं। जैसे

(1) पोरसांतुले झाडावेलें सगटापशी सोबीत फूल काडून हावें दवरलें	चुना है बागों से मैंने खूबसूरत एक फूल
(2) ह्या भिकार्याल्या अक्षरांचीं उडयतां ही अक्षतां	मुइन भिक्षुक का लो यह समर्पण लो अक्षरों का अक्षत

पहले उदाहरण में यह तय करना कठिन है कि यहाँ 'पोरसांतुले' शब्द एकवचन है या बहुवचन क्योंकि यहाँ पर प्रत्यय जोड़ने के कारण



एकवचन में बहुवचन का रूप समान रह जाता है। अनुवाद में इस शब्द का रूप 'बागों' (बहुवचन) में तय कर लिया गया है। यहाँ अर्थ प्रसंग के अनुसार ही समझा जाता है।

दूसरे उदाहरण में 'हीं अक्षतां' नपुंसकलिंग बहुवचन में आया है। एकवचन के लिए 'हें अक्षत' का प्रयोग किया जाता है। अनुवाद में बहुवचन का रूप एकवचन कर दिया गया है।

विशेषणों का विपर्यय व्याकरण सम्बन्धी समस्याओं का एक प्रमुख पक्ष प्रस्तुत करता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह प्रकट हो जाता है–

देवळांत अंगेले उत्सव आसा (कोंकणी)

मन्दिर में हमारा उत्सव है। (हिन्दी)

मूल में 'अंगेले देवळांत' (हमारे मन्दिर में) अर्थ लगना है। यहाँ पर विशेषण मन्दिर के साथ जुड़ना है। अनुवाद में विशेषण 'उत्सव' के साथ हुए हैं। इससे अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। कोंकणी की इन प्रवृत्तियों पर अनुवाद के समय विशेष ध्यान रखना होता है।

इसी प्रकार कोंकणी और हिन्दी में कई ऐसे शब्द हैं जो अर्थकल्पना में भ्रम पैदा कर जाते हैं। ध्वनि की दृष्टि से ये समानरूपी हैं। लेकिन अर्थ तो भिन्न रहता है। जैसे कोंकणी का 'गोब्बोर' और हिन्दी का 'गोबर'। कोंकणी शब्द का अर्थ है। 'राख' जो हिन्दी शब्द के अर्थ से भिन्न है। 'पिल्ला' शब्द हिन्दी में कुत्ते के बच्चे के लिए प्रयुक्त होता है। कोंकणी में इसका सामान्य अर्थ है–'बच्चा'। इसी प्रकार 'तोय' शब्द हिन्दी में 'जल' के अर्थ में प्रयुक्त है तो कोंकणी में 'पके हुए तुवर दाल का पानी'–अर्थ में प्रयुक्त होता है। अनुवाद करते समय ऐसे शब्दों से बड़ी ही सजगता बरतनी होती है। कोंकणी का 'गोड' शब्द कहीं कहीं संज्ञा के रूप में और विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है। संज्ञा के रूप में इसका अनुवाद होगा 'गुड' और विशेषण के रूप में 'मधुर'। कोंकणी और हिन्दी में इस प्रकार के और भी कई शब्द देखने को मिलते हैं जिनसे सजग रहना अनुवाद के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

काव्य में तो ध्वनि का विशेष महत्त्व रहता है। ध्वन्यात्मक अर्थ काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाता है। ऐसे शब्दों का अनुवाद जिनमें ध्वन्यात्मक अर्थ रहता है, मूल के सौन्दर्य के पूर्ण रूप से लक्ष्य-भाषा में नहीं उतार सकता। यह ध्वन्यार्थ काव्य का प्राण माना जाता है और काव्य को उदात्त

बना देता है। अनुवाद में मूल का अर्थ पूरे प्रभाव के साथ नहीं उतर पाता। उदाहरण के लिए—

वाय्रया भटान म्हणले मंत्र	वायु-पुरोहित ने किया मंत्रोच्चार
अंत्राळाचो अन्तरपाट	रहा शैवाल का अन्तर पाट
दक्षणेक माडमाम	दक्षिणा देता नारियल का पेड़
चुट्टांचे करून हात	पत्तों के हाथों को बढ़ाकर।
व्होक्कलेच्यो होंटी भरीत	नाचने वाली लाल लाल लहरें
मुर्गट्टां तांबडी ल्हारां	वधू की साड़ी के पल्लू में
फोफळांच्या अक्षतानी	भर रहीं धान
भल्लीं आज कुळागरां।	सुपारी के अक्षतों से आज
	भर गए सुपारी के बाग।

इन पंक्तियों में वर्षाऋतु के प्रकृति का सुन्दर चित्र मिलता है। ध्वन्यात्मक अर्थ के साथ प्रकृति सौन्दर्य का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया गया है। हिन्दी अनुवाद में जो चित्र प्रस्तुत है वह मूल के करीब ही कहा जा सकता है। मूल का पूरा प्रभाव अनुवाद में नहीं आ सका है। 'अंत्राळाचो अंतरपाट' में जो अनुप्रास की छटा है वह अनुवाद में नहीं आ सकी है। मूल का ताल और लय अनुवाद में नष्टप्राय है। कोंकणी शब्दों का सौन्दर्य अनुवाद में कहाँ? मूल कविता खण्ड में कुल मिलाकर शादी का एक सुन्दर चित्र प्रकृति की आड लेकर खींचा गया है। अनुवाद के जरिये इसके पूरे सौन्दर्य का आस्वादन नहीं होता। वर्षा काल में प्रकृति अपने समस्त ऐश्वर्य के साथ, विवाह के लिए तैयार होकर आई हुई वधू की जैसी लग रही है। इसका आस्वादन मूल का पाठक जिस प्रकार करता है वैसे अनुवाद का पाठक नहीं कर सकता। और एक उदाहरण देखिए—

सैमाचे दिवलेंतली	प्रकृति के दिये की जलती हुई
पर्जळटी सोंपली बात	बत्ती बुझ गई।
आयज सगल्या संवसारार	आज समस्त संसार पर
अकस्मात काळखी रात	अकस्मात् काली रात छा गई।
उजवाडाच्या सूर्य देवान	प्रकाश के देवता सूरज ने
आयज सोडलीं किरणां काळीं	आज अंधकार की काली किरणें छोड़ीं
मनशांतलें माणीक सोदूंक	चारों ओर दुःख ही दुःख

भोंवता दूख 'जळीमळीं'। मानवहृदयों के माणिक्य की खोज में।

इन पंक्तियों में पं. जवाहरलाल नेहरू के स्वर्गवास पर प्रकृति में दुःख लहरों की जो प्रतिच्छाया दिखाई दी उसका अलंकारों के माध्यम से सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। मूल का चित्र अनुवाद में भी सफलता के साथ खींचा गया है। फिर भी मूल में अप्रस्तुतों के सुन्दर वर्णन से दुःखपूर्ण घड़ी का जो परिचय कराया गया है, उसका पूर्ण रूप अनुवाद में नहीं आ सका है। ध्वन्यार्थ तो थोड़ा बहुत अनुवाद में भी मिलता है। लेकिन कोंकणी के शब्दों, सोडलीं, किर्णा कालीं, मनशांतलें, जळीमळीं, में जो प्रभाव है, जो सौन्दर्य है वह अनुवाद में नहीं आ सका है।

सांस्कृतिक समस्याएँ

सांस्कृतिक भिन्नता काव्यानुवाद की एक बड़ी समस्या है। सांस्कृतिक शब्दावली भिन्न-भिन्न प्रतीकों को प्रस्तुत करती है जो विशेष भाषा की अपनी अलग अस्मिना को लिए हुए रहती हैं। उनको दूसरी भाषाओं में उतारना बहुत कठिन रहता है। कभी-कभी असम्भव भी हो जाता है। स्रोतभाषा के पाठकों के मन में ये सांस्कृतिक बिम्ब एवं प्रतीक जो प्रभाव पैदा करता है वैसा लक्ष्य भाषा के पाठकों में नहीं। क्योंकि वे इन बिम्बों से अपरिचित रहते हैं। सांस्कृतिक शब्दावली की भी यही अवस्था है। उदाहरण के लिए देखिए--

पालखेंत झालर जायाय	पालकी का झालर बन जाएँ
पालखे मुखार	पालकी के आगे
दिवट्यो जायाय	दीवटवाले दिये बन जाएँ
केरींत फांती राबून	गली में पंक्तियों में रहकर
चकचकीत उजवाडघालाय	जगमग ज्योति फैलाएँ
भंगरापूडी हावडून	सुवर्णधूलि बिखेरकर
रस्तयार सिंतोड कराय	रास्ते को पवित्र कर जाएँ

प्रस्तुत उदाहरण में एक सांस्कृतिक पर्व एवं उससे सम्बन्धित जुलूस की ओर संकेत है। पालकी में भगवान की मूर्ति को रखकर गलियों से होकर जब जुलूस निकलता है तो गलियों में दोनों ओर लोग पंक्तिबद्ध होकर जुलूस के स्वागतार्थ खड़े हो जाते हैं। पालकी जिस रास्ते से जाती

है उस पर गोबर मिला हुआ पानी (सिंतोडो) छिड़का जाता है जिससे कि रास्ता पवित्र हो जाए। इस कविता खण्ड में सांस्कृतिक पर्व पर संकेत किया गया है। इसका अनुवाद वह चाहे किसी भी भाषा में हो, मूल का पूरा प्रभाव उत्पन्न करने में सफल नहीं हो सकता और एक उदाहरण देखिए—

मावूळ भयणीले	मामा की बेटी के
लग्ना दिसांक	शादी के दिन
अंगेर बारापळेची	आयी हमारे घर
मावशी आचली	बारापले* की मौसी
ओवि म्हणून	गीत गाकर
व्होडो तेळूंक	मोदक तलने
सेजारण्यांक मेळोन	पड़ोसिनों के साथ
वासरेंत बेसंली	रसोई में बैठी

इस कविताखण्ड में शादी की रस्मों का विवरण मिलता है। शादी की कोई भी रस्म चार महिलाएँ मिलकर ही पूरी करती हैं। इन पंक्तियों में इस ओर भी संकेत मिलता है। स्रोत भाषा (कोंकणी) के पाठकों को छोड़कर दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) के पाठक इस कविता खण्ड का पूरा आस्वादन करने में सफल नहीं बन सकते।

कोंकणी हिन्दी अनुवाद में सांस्कृतिक शब्दों में अनुवाद निस्सन्देह समस्यायें उत्पन्न करता है। 'दिवटी' शब्द का 'मशाल' के रूप में अनुवाद, 'कर्म्बल' का 'इमली' के रूप में अनुवाद निस्सन्देह लक्ष्य भाषा के पाठकों में भ्रम पैदा कर सकता है। दिवटी शब्द का अर्थ है दीवटवाला दिया जिसे लोग हाथ में लेकर चलते हैं। यह एक रिवाज़ है। मशाल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। कोंकणी हिन्दी काव्यानुवाद में ऐसे कई शब्द जो खान-पान, पहनावा, आभूषण, रीति-रिवाज आदि से सम्बन्धित हैं। अनुवाद के वक्त कठिनाइयां उपस्थित करते हैं जिनसे बच पाने का एक ही उपाय है, मूल के शब्द को ज्यों का त्यों रखते हुए उसके लिए टिप्पणियाँ प्रस्तुत करना।

शैलीगत समस्याएँ

जहाँ तक काव्यानुवाद का सम्बन्ध है शैलीगत समस्या अत्यन्त जटिल

* केरल का एक स्थान

होती है। शैली शब्द काव्य में दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। एक लेखक की शैली, दूसरी भाषा की। अनुवाद में तो अनुवादक का व्यक्तित्व ही प्रमुख होता है। इसलिए निस्सन्देह अनुवाद की शैली लेखक की न होकर अनुवादक की रहती है। भाषा शैली को ले लें तो अनुवाद में मूल की शैली में परिवर्तन होता रहता है। स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा अलग-अलग होती है। हर एक भाषा की अपनी अलग शैली होती हे। जहाँ तक कोंकणी और हिन्दी का प्रश्न है कोंकणी की अलग शैली एवं हिन्दी की अलग शैली होती है। अनुवाद में शब्द के ध्वनिगत, रूपगत एवं वाक्यगत रूप पर बल दिया जाता है। ध्वनिपरिवर्तन से कहीं कहीं अर्थपरिवर्तन भी होता है। एक ही रूपवाले शब्दों में भिन्न भाषाओं में अर्थगत भिन्नताएँ रहती हैं। वाक्य में शब्द का स्थान भी अर्थ निर्धारण में सहायक रहता है। भिन्न-भिन्न भाषाओं में ये प्रवृत्तियाँ भिन्न प्रकार की होती है। इसलिए अनुवाद क्लिष्ट बन जाता है। ऐसी हालत में स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा का तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन आवश्यक बन जाता है। जहाँ तक कोंकणी और हिन्दी का प्रश्न है ध्वनिगत समस्याएँ अनुवाद को क्लिष्ट बनाती रहती हैं। कोंकणी में अनुरणनात्मक शब्दों की भरमार रहती है जिनके प्रयोग से काव्य में सौन्दर्य आ जाता है। उदाहरण के लिए 'झरझरीत' 'गडगडेय', 'थरथरना', 'सरसरता', 'शिरशिरेलो' आदि। हिन्दी में इन शब्दों का अनुवाद जब प्रस्तुत किया जाता है तो मूल का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। ऐसे शब्द अनुप्रास में भी सहायक रहते हैं जैसे–

बैलान जूं शेडाचलें	बैल ने जूआ नष्ट किया
नांगर गुटें मोडयलें	हल की कोर डाली तोड़
बैलान किरयकिरयलें	और विजय की मारी चीख
घट थंय जिरयलें॥	जोश में शक्ति उड़ा दी सारी॥

कोंकणी का यह कविता खण्ड अनुवाद में मूल का पूरा सौन्दर्य अपने में ला नहीं सका। मूल में मिलने वाली अनुप्रास की छटा, ताल एवं लय अनुवाद में नष्ट हो चुका। मूल के ये शब्द कोंकणी के अपने हैं और दूसरी भाषाओं में इन्हें प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इनके समानतावाची शब्द मूल का प्रभाव नहीं ला सकते।

शब्दावली की समस्या

कोंकणी और हिन्दी एक ही परिवार की भाषाएँ हैं और दोनों भाषाओं में अनेक समानार्थक शब्द भी मिल जाते हैं। अनुवाद में ऐसे शब्दों को चुन-चुनकर प्रयोग अनुवाद को मूल के सर्वाधिक निकट रख सकता है। लेकिन मात्र शब्दानुवाद या समानार्थक शब्दों के प्रयोग से अनुवाद सफल नहीं बन सकता। शब्दों के अर्थ निर्धारण में कई बातों पर ध्यान देना होता है। शब्द की अर्थद्योतन की शक्ति अपार है। यह सभी भाषाओं में समान नहीं होती। कोंकणी और हिन्दी में उल्लू का वाचक शब्द प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान करता है। कोंकणी का घुग्घूम (उल्लू) शब्द मूक व्यक्ति का वाचक है तो हिन्दी में यह शब्द बुद्धिहीनता का द्योतक है। अनुवाद में इस अन्तर की ओर विशेष ध्यान रखना पड़ता है। क्योंकि इन प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग दोनों भाषाओं में भिन्न अर्थों में होता है। यही नहीं शब्दों के साथ अनेक भाव, इच्छाएँ और अनुभूतियाँ जुड़ी रहती हैं जो दोनों भाषाओं में समान नहीं होतीं। काव्य में इनकी प्रमुखता रहती है और शब्द के अर्थद्योतन में इनका बड़ा महत्त्व रहता है। यहाँ पर अर्थगत अपूर्णता काव्य के प्रभाव को नष्ट कर सकती है। उदाहरण :

खावंक मेळ्ळे वोडे	खाने को मिला पकवान
पीवंक हाडले सोडे	पीने को सोडे की बोतल
पवन्नासांच्या नोटांसयत	रुपये पचास के नोट सहित
दिल्ले आम का वीडे	दे दिये हमको उसने वीडे

प्रस्तुत उदाहरण में जो सन्दर्भ विभिन्न सांस्कृतिक शब्दों के जरिये वर्णित है वह अनुवाद में किसी भी हालत में पूरा उतारा नहीं जा सकता। 'वोडे', 'वीडे' आदि शब्द यहाँ पर कई ऐसे भावों को लेकर चलते हैं जिनका चित्रण अनुवाद में नहीं आ सकता।

शब्दों की पुनरुक्ति एवं अनुरणन अर्थ पर भी प्रभाव डालता रहता है और तद्वारा प्रसंग को प्रभावपूर्ण बना देता है। कोंकणी में यह प्रवृत्ति अक्सर देखी जाती है। इस हालत में मूल का पूरा प्रभाव अनुवाद में नहीं आ सकता। जैसे—

1	रड्त्या पोरा मुखामळार	रोते शिशु के मुखकमल पर
	दुकांतल्यान हळू हळूच	आँसुओं से धीरे-धीरे
2.	रक्ताचोव्हाळ झरझरीत व्हांवलो	खून की नदी ही बही

3. हुनहुनीत रक्ताचे गरम खून के

इन उदाहरणों में शब्दों की पुनरुक्ति एवं अनुरणनात्मक शब्द अर्थद्योतन में प्रभावात्मकता लाने में समर्थ हुए हैं। अनुवाद में मूल का यह सौन्दर्य एवं प्रभावात्मकता किसी भी हालत में लाई नहीं जा सकती। फलतः मूल का सौन्दर्य अनुवाद में नष्ट हो चुका है।

वाक्य के अन्तर्गत शब्दों के प्रयोग के सन्दर्भ में मुहावरे, कहावतें आदि का भी प्रयोग रहता है। इनका प्रयोग मूलभाषा में जहाँ अर्थद्योतन में सौन्दर्य उत्पन्न करता है और प्रसंग को सशक्त रूप में चित्रित करता है तो लक्ष्य भाषा में आकर सारा प्रभाव नष्ट हो जाता है। मुहावरा किसी भी भाषा के लिए अपने ढंग का अकेला होता है। वह उस भाषा के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास से सम्बद्ध रहता है। इसलिए इन मुहावरों के समान मुहावरों को लक्ष्य भाषा में ढूँढ़ लेना उतना आसान नहीं रहता। एक ही परिवार की भाषाओं में कभी-कभी ऐसे मुहावरे बहुत कम पाये जाते हैं जो समानार्थक हों। जैसे–

फांफुड तुजीं उतरां खोंचीक	फटकार के शब्द तुम्हारे
घायार म्हज्या मीठ कड़ों	भेद रहे हैं हृदय हमारे
	जैसे जले पर नमक

कोंकणी का 'घायार मीठ' हिन्दी में 'जले पर नमक' के रूप में इन पंक्तियों में महावरे के सफल अनुवाद के रूप में देखा जा सकता है। लेकिन निम्नलिखित पंक्तियों में मुहावरे का सफल अनुवाद शायद सम्भव नहीं है।

जीव असल्यार खावं भिकेंचे	जान मिले तो लाखों पाये
होय जंयचो दिग्विजय	यही था जय की दिग्विजय

जहाँ पर जीना इतना दूभर बन जाता है कि लोगों को ऐसा लगता है कि जान मिले तो भीख माँग कर भी खाया जा सकता है। कोंकणी के इस शब्द प्रयोग के उसी अर्थ में हिन्दी में प्रयोग मिलना कठिन है। इसलिए इस मुहावरे का अर्थ सूचित करने वाला दूसरा मुहावरा यहाँ प्रयुक्त हुआ ऐसे अनुवाद प्रस्तुत करने के लिए अनुवादक को स्रोतभाषा एवं लक्ष्य भाषा का सम्यक ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। स्रोत भाषा के मुहावरे के अनुकूल लक्ष्य भाषा में उचित मुहावरे को चुनने की शक्ति उसमें होनी चाहिए। इसके अभाव में अनुवादक असफल रह जाता है।

अलंकारों का प्रयोग

अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाने वाले होते हैं। कई शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का सहज प्रयोग काव्य में सौन्दर्य का कारण बन जाता है। लेकिन जब अलंकारों वाले किसी का काव्यखण्ड का अनुवाद किया जाता है तो अधिकांश उदाहरणों में यह मूल के सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। जहाँ तक कोंकणी हिन्दी अनुवाद का सम्बन्ध है कोंकणी कविता में अनेक ऐसे सहज अलंकार मिलते हैं जो भाषा की विशेष प्रकृति के कारण आते हैं। अनुप्रास इनमें एक हैं। उदाहरण के लिए—

आज्जो आज्जी वजीं म्हणचें	दादा दादी भार कहते
बापा मन नाका रे	पापा का मन ना रहे
श्राप मुरमुरून भोवंपी	शाप देती मुरमुराती
आवय काळीज नाका रे	माई का मन ना रहे

कोंकणी और हिन्दी एक ही परिवार की भाषाएँ होने के कारण अनुवाद करने में कठिनाई तो नहीं रही, बल्कि मूल पंक्तियों में 'ज' को लेकर जो अनुप्रास मिलता है वह अनुवाद में नहीं आ सका है। तीसरी पंक्ति में 'र' के पुनरावर्तन के कारण जो अलंकार कोंकणी में है वह हिन्दी अनुवाद में उतने प्रभाव के साम्य प्रस्तुत नहीं हो सका। कुल मिला कर मूल का सौन्दर्य अनुवाद में पूरा नहीं उतर आया है और एक उदाहरण देखिए—

इतले किकिर?	ऐसा क्यों! इतना शोर!
फुडल्या दारा मुकार	जैसे आगे के द्वार पर
भीकमगरीण।	भिखारिन है खड़ी
इतने जीर्णवस्त्र	इतने जीर्ण शीर्ण कपड़े
चिकलट बाण शीरें कशें!	धूलिधूसरित!

इसमें 'र' का बार बार प्रयोग मूल कविताखण्ड में अनुप्रास का सौन्दर्य ले आता है। अन्तिम पंक्ति में 'चिकलट बाणशीरें कशें' के प्रयोग से भिखारिन के जीर्ण-शीर्ण, धूलिधूसरित कपड़ों का प्रभावपूर्ण वर्णन किया गया है जो उपमालंकार के अस्तित्व के प्रसंग को अधिक सजा देता है। अनुवाद के 'धूलिधूसरित' शब्द में यह पूरा प्रभाव नहीं देखा जाता। इसमें केवल भावार्थ मिलता है।

ऊपर कही हुई समस्याओं के बावजूद कहीं कहीं कोंकणी-हिन्दी का सफल काव्यानुवाद भी प्रस्तुत किया जा सकता है। दोनों भाषाएँ एक ही परिवार की हैं और समान स्रोत से दोनों भाषाओं का शब्द भण्डार विकसित हुआ है। इसलिए ऐसे समानार्थक शब्दों को चुनकर मूल में वर्णित प्रसंग को पूरे प्रभाव के साथ अनुवाद में ले आना भी सम्भव हो सकता है जैसे कि निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है—

सावरे कापसा आंग तिजे	रेशम जैसी देह उसकी
रंगान काली सावली	रंग काला साँवला
रूप निवळ उदकावरी	रूप निश्चल पानी जैसा
नाजुक कंवळी कळी	नाजुक कमल कली-सी
कुरकुर कुरकन्न कानात तुज्या	कुरकुर कुरकन्न कान में तेरे
सांगतली नी काणी	कहती जाय कहानी

इन पंक्तियों में नींद का मानवीकरण मिलता है। नींद रूपी सुन्दरी के रूप एवं चाल का सुन्दर चित्र यहाँ खींचा गया है। मूल के शब्द एवं भाव जैसे के तैसे अनुवाद में भी मिलते हैं और सभी दृष्टियों से यह एक सफल अनुवाद माना जा सकता है। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण कोंकणी हिन्दी अनुवाद के प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कोंकणी-हिन्दी काव्यानुवाद में दोनों भाषाओं की भिन्न प्रवृत्तियों के कारण कई समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। कोंकणी तालयुक्त मधुर भाषा है जो कविता के लिए उत्तम है। लेकिन हिन्दी में उतना सौन्दर्य नहीं है। सांस्कृतिक वातावरण में पले हुए कई ऐसे शब्द कोंकणी में मिलते हैं जो उस भाषा के अपने ढंग के अलग ही हैं। हिन्दी में इन शब्दों का सफल अनुवाद सम्भव नहीं है। फिर भी एक ही परिवार की भाषाएँ होने के कारण कहीं-कहीं ये समस्याएँ नगण्य रह जाती हैं और कोंकणी हिन्दी काव्यानुवाद अत्यन्त सफल भी बन सकता है। आज कोंकणी में निरन्तर काव्य प्रणयन होता रहा है और यह अत्यन्त आवश्यक बन गया है कि हिन्दी में इसका अनुवाद प्रस्तुत किया जाए।

□□□

Issued on	Borrower's No. And Signature	Returned on

220
Gen-> Dere
SUM

डॉ. एल. सुनीता बाई

जन्म : 24 मई, 1944

शिक्षा : बी.ए. (संस्कृत), एम.ए. (हिंदी) पी-एच. डी।

सन् 1966 से हिन्दी भाषा एवं साहित्य के शोध में लगी हुई हैं। इनके निर्देशन में अभी तक 14 शोधप्रबन्ध तैयार किए गए हैं। दस पुस्तकें और कई शोधपत्र प्रकाशित। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान एवं तुलनात्मक अध्ययन में विशेष रुचि। गत बीस वर्षों से हिन्दी और कोंकणी के तुलनात्मक अध्ययन में रत। इस दिशा में इनके निर्देशन में तीन शोध-प्रबन्ध तैयार किए गए हैं। सन् 1983 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की आर्थिक सहायता से इन्होंने कोंकणी-हिन्दी मलयालम कोश तैयार किया है। कोश की भूमिका में कोंकणी शब्दावली के विकास के इतिहास का शोधपरक अध्ययन किया गया है। सन् 2000 में 'कोंकणी भाषा के लिए नागरीप्रयोग की सार्थकता' नामक शोध-निबन्ध के लिए पुरस्कृत। आजकल ये हिन्दी एवं कोंकणी की मूलभूत एकता एवं कोंकणी भाषा के ऐतिहासिक महत्त्व को लेकर विशेष शोधकार्य में रत हैं।

